इस्लाम कैसे फैला?

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह कृपाशील और दयावान के नाम से'

दो शब्द

यह किताब इस्लामी दुनिया के सुप्रसिद्ध शुभ-चिन्तक एवं विद्वान लेखक 'सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)' के शृँखलाबद्ध लेखों का संग्रह है, जिसे उन्होंने अल-जमइय्यत (दिल्ली) अख़बार के जुलाई-अगस्त 1925 ई० के अंकों में सम्पादकीय लेखों की शक्ल में लिखा था। मौलाना उस वक़्त 'अलजमइय्यत' अखबार के सम्पादक थे और उम्र सिर्फ़ बाईस साल की थी। उस नवउम्री के बावुजूद विषयों में चिन्तन एवं दृष्टि की जो गहराई और दुरुस्तगी पाई जाती है वह एक ऐसी हस्ती के अन्दर क़ुदरत की तरफ़ से रखी ही जानी चाहिए थी जिसे आगे चलकर इल्म (ज्ञान) के मैदान में तने-तनहा इस्लामियात की एक एन्साइक्लोपीडिया, और अमल के मैदान में दीन को ज़िन्दा और उसे आगे बढ़ाने की जिद्दो-जुहद का सरापा नमूना बनना था।

ये बहुमूल्य लेख लगभग आधी सदी से अलजमइय्यत की पुरानी फ़ाइलों में दबे-पड़े थे। जनाब शहीर नियाज़ी (कराची) और जनाब हफ़ीज़ुर्रहमान अहसन (प्रबन्धक ऐवान-ए-अदब लाहौर) मुबारकबाद के पात्र हैं कि उनकी कोशिशों से यह ख़ज़ाना सबके सामने आ गया और ये लेख संकलित होकर किताब की शक्ल में प्रकाशित हो गए। अब इन हज़रात के शुक्रिए के साथ मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स (नई दिल्ली) भी इसे प्रकाशित कर रहा है ताकि हमारे देश के इल्म का शौक़ रखनेवालों के लिए भी इसकी उपलब्धता आसान हो जाए।

मौलाना की अद्वितीय पुस्तक ''अलजिहाद फ़िल-इस्लाम'' (1927) को उनकी प्रथम रचना की हैसियत हासिल रही है। हालाँकि बाक़ायदा और स्थायी रचना की हैसियत से प्रथम होने का यह स्थान अब भी उसी को प्राप्त रहेगा, लेकिन अगर ''बाक़ायदा और स्थायी'' हैसियत की क़ैद को नज़रअन्दाज़

कर दिया जाए तो अब मौलाना की प्रथम कृति यह किताब (इस्लाम कैसे फैला?) क़रार पाएगी। फिर शायद यह बात भी अन्तिम न हो और आगे चलकर ख़ुद अल-जमइय्यत ही की बाक़ी पड़ी फ़ाइलों में या 'ताज' (जबलपुर) और 'मुस्लिम' (दिल्ली) के पन्नों में (जिनके मौलाना अल-जमइय्यत से भी पहले एडीटर रहे हैं) किसी ढूँढने वाले को लेखों की कोई और भी शृंखला या विषयों का संग्रह हाथ आ जाए और वह किताब का रूप धारण करके मौलाना की पहली रचना कहे जाने का गौरव प्राप्त कर ले। मौलाना जैसे प्रतिष्ठित चिन्तकों और रचनाकारों के तो एक-एक वाक्य तलाश किए जाते हैं। इसलिए उनकी पुरानी से पुरानी तहरीरों की जुस्तजू (खोज) भी बहरहाल सम्भावित है।

ये लेख उस ज़माने में लिखे गए थे जब भारतीय उपमहाद्वीप में शुद्धीकरण की तहरीक पूरे ज़ोर-शोर के साथ चल रही थी। वातावरण अत्यन्त तनावपूर्ण और धार्मिक दृष्टि से परिस्थिति बड़ी विकल थी। इन्हें पढ़ते वक़्त उस समय की यह पृष्ठभूमि भी ज़रूर सामने रहनी चाहिए। इस किताब के अध्ययन से सिर्फ़ यही नहीं स्पष्ट होता है कि लेखक ने इस्लाम के अस्ल शक्ति-स्रोत की ओर संकेत किया बल्कि यह तथ्य भी उभरकर सामने आ जाता है कि उनके यहाँ एक चिन्तन-क्रम है जो आरम्भ ही से चला आ रहा है। बाद के ज़मानों में उन्होंने एक लेखक, एक चिन्तक, एक दार्शनिक, एक व्याख्याकार और सत्य के एक आह्वाहक की हैसियत से दुनिया के सामने जो कुछ विस्तार और प्रमाण के साथ पेश किया है वह कम से कम संक्षिप्त रूप से उनकी तीव्र बुद्धि में पहले दिन से मौजूद था। उनकी नज़र आरम्भ ही से गन्तव्य स्थल से परिचित थी।

अल्लाह अपना फ़ज़्ल जिसको चाहता है, प्रदान करता है।

04 मार्च, 1974 ई॰ —सदरुद्दीन इस्लाही (रह॰)

कुछ किताब के बारे में

आमतौर से इस्लाम के बारे में यह ग़लतफ़हमी पाई और फैलाई जाती है कि "इस्लाम तलवार के ज़ोर से फैला है।" लेकिन इतिहास गवाह है कि इस बात में कोई सच्चाई नहीं है। क्योंकि इस्लाम ईश्वर की ओर से भेजा हुआ सीधा और शान्तिवाला रास्ता है। ईश्वर ने इसे अपने अन्तिम दूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के ज़रिए तमाम इनसानों के मार्गदर्शन के लिए भेजा। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने इसे केवल लोगों तक पहुँचाया ही नहीं बल्कि इसके आदेशों के अनुसार अमल करके और एक समाज को इसके अनुसार चलाकर भी दिखाया। इस्लाम चूँकि अपने माननेवालों पर यह ज़िम्मेदारी डालता है कि वे इसके सन्देश को लोगों तक पहुँचाएँ, अतः इसके माननेवालों ने इस बात को अहमियत दी। उन्होंने इस पैग़ाम को लोगों तक पहुँचाया भी। जब लोगों ने इस सन्देश को सुना और सन्देशवाहकों के किरदार को देखा तो उन्होंने दिल से इसे स्वीकार किया।

इस किताब में मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह॰) ने इसी बात को सिद्ध किया है कि इस्लाम जिस तलवार से फैला वह कोई लोहे की नहीं बल्कि चरित्र और किरदार की तलवार थी।

यह किताब 'इस्लाम कैसे फैला?' के नाम से उर्दू में प्रकाशित हो रही है। इस किताब के महत्व को देखते हुए इसके आरम्भिक 7 अध्यायों का अनुवाद हिन्दी पाठकों के लिए प्रस्तुत है। इस किताब के लेख क्योंकि 1925 ई॰ के हैं इसलिए इसमें जो आँकड़े दिए गए हैं वे उसी समय के हैं। स्पष्ट है कि आज वे आँकड़े बिल्कुल बदल गए हैं लेकिन इससे किताब का महत्व कम नहीं होता है।

इस किताब को हिन्दी में प्रकाशित करने के पीछे दो उद्देश्य हैं। एक यह कि लोगों की ग़लतफ़हमी दूर हो कि इस्लाम बलपूर्वक फैला है। दूसरा

यह कि इस्लाम के माननेवालों को अपनी इस ज़िम्मेदारी का एहसास हो कि हमें ख़ुदा के इस मधुर सन्देश को लोगों तक पहुँचाना है। क्योंकि दुनिया भर में जितनी भी समस्याएँ हैं उनका समाधान ईश्वर की ओर से अवतरित इस दीन 'इस्लाम' ही में है। तथा लोगों की नजात (मुक्ति) भी इसी में है कि वे ख़ुदा के रास्ते पर चलें।

प्रूफ़ आदि की दृष्टि से हमने पूरी सावधानी बरती है कि कोई त्रुटि न रहे, लेकिन अगर फिर भी कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से निवेदन है कि हमें लिखें। हम आपके मशवरों का स्वागत करेंगे।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट इस्लाम के सन्देश को हिन्दी भाषियों तक पहुँचाने की सेवा में लगा हुआ है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमारी इस सेवा को स्वीकार करे और हमें और अधिक काम करने का अवसर प्रदान करे।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेटरी
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट
(दिल्ली)

अध्याय-1

मुसलमानों की धर्म-प्रचार अभिरुचि

जब से कुछ नव-मुस्लिम क़ौमों में दीन से फिरने की वबा फैली है भारत[1] के मुसलमानों में आम हलचल मच गई है और हर तरफ़ से इस्लाम के प्रचार-प्रसार की आवाज़ बुलन्द होने लगी है। विभिन्न संस्थाएँ इस काम को अपने हाथ में लेकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार दीने-हक़ की दावत की ख़िदमत अंजाम दे रही हैं। पत्र-पत्रिकाओं में इसकी महत्ता पर गर्मा-गर्म बहसें जारी हैं। दावत और तबलीग़ के नए-नए तरीक़ों और संसाधनों की खोजबीन के लिए सभाएँ हो रही हैं और अब तो ऐसा आभास होता है कि मुसलमानों के अन्दर वास्तव में ही दावतो-तबलीग़ की अभिरुचि पैदा हो गई है। लेकिन जब हम इस मसले पर गहरी नज़र डालते हैं तो हमें महसूस होता है कि हम आजकल के मुसलमान दावतो-तबलीग़ की उस अभिरुचि से बिल्कुल ही अनभिज्ञ और अपरिचित हैं जो किसी ज़माने में इस्लाम की फ़ातिहाना (विजयी) शक्तियों की ज़मानत हुआ करती थी और उसकी सार्वभौमिकता और विश्वव्यापकता का सबसे अधिक उपयुक्त हथियार थी। अगर आज हमारे अन्दर वही अभिरुचि मौजूद होती तो शायद इन कान्फ्रेंसों और सभाओं की ज़रूरत ही पेश न आती और दुश्मन के ग़लबे से हमारे घर में मातम पैदा होने के बजाए ख़ुद दुश्मन के समूहों में हमारे दीन (इस्लाम) की बढ़ती हुई ताक़त से खलबली मची हुई होती। जब कभी हम ग़ौर करते हैं कि यह उस मज़हब के अनुयायियों की चीख़-पुकार है, जिसकी संरचना में भलाई की तरफ़ बुलाना और अल्लाह के दीन के प्रचार-प्रसार का फ़र्ज़ एक अभीष्ट अंग की हैसियत से शामिल था, जिसके पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अपना पूरा जीवन ख़ुदा का आख़िरी पैग़ाम उसके बन्दों तक पहुँचाने में व्यतीत कर दिया था और जिसके पाकबाज़ अनुयायियों ने एक सदी (शताब्दी) के

1. यहाँ मुराद अविभाजित भारत है (1925 ई॰ में)

अन्दर-अन्दर प्रशान्त महासागर के तटों से लेकर अटलांटिक महासागर के किनारों तक अल्लाह के दीन को फैला दिया था तो हम हैरान होकर सोचने लगते हैं कि क्या यह वही मज़हब है, या हम मुसलमानों ने बनी-इसराईल की तरह अपने पैग़म्बरों के बाद कोई और नया मज़हब बना लिया है।

हमारी ज़बानों पर प्रचार! प्रचार! का जाप जारी है और हम प्रचार के लिए समितियाँ बनाकर इस्लाम का प्रसार करना चाहते हैं। मगर शायद यह इस्लामी इतिहास में पहली घटना है कि उसके अनुयायियों ने ईसाइयों की तरह मिशनरी सोसायटियाँ बनाने की कोशिश की है या इस बेताबी के साथ प्रचार का शोर मचाया है। अगर कामयाबी का हक़ीक़ी राज़ सिर्फ़ समितियाँ बनाने और शोर व हंगामों में होता तो यक़ीनन हमारी तरक़्क़ी की गति हमारे पूर्वजों से अधिक तेज़ होनी चाहिए थी। लेकिन इसके विपरीत हम देख रहे हैं कि इन संसाधनों को लेकर हमारा हर क़दम पीछे की ओर उठ रहा है, और इस साधनहीनता की दशा में हमारे पूर्वजों की कामयाबियों की यह स्थिति थी कि उनकी बदौलत आज दुनिया के कोने-कोने में इस्लाम के अनुयायी मौजूद हैं और ख़ुद भारत में हमारी तादाद सात[1] करोड़ तक पहुँची हुई है। फिर आख़िर सोचना तो चाहिए कि हम में किस चीज़ की कमी है और इस्लाम के प्रचार-प्रसार का अस्ली राज़ क्या है?

हक़ीक़त यह है कि आज ये जितनी कमज़ोरियाँ मुसलमानों में पैदा हो गई हैं सब सिर्फ़ इसलिए हैं कि उनमें से इस्लामी आत्मा निकल गई है और वे भूल गए हैं कि मुसलमान होने की हैसियत से वे क्या हैं। अगर वे इस्लाम को समझ लें और उनको मालूम हो जाए कि एक मुसलमान के जीवन का उद्देश्य और मक़सद क्या होता है तो यह इस्लाम के प्रचार-प्रसार का मसला अपने आप हल हो जाएगा।

मुसलमान का जीवन-उद्देश्य

प्रोफ़ेसर मैक्स मूलर (Max Muller) ने कहा था कि इस्लाम अस्ल में एक प्रचार-प्रसार वाला मज़हब है, जिसने अपने-आपको प्रचार की बुनियादों

1. यह 1925 की बात है। अब यह तादाद बहुत ज़्यादा हो चुकी है।

पर स्थापित किया है। इसी की ताक़त से उसने तरक़्क़ी की और इसी पर उसका जीवन निर्भर है। इस्लामी शिक्षाओं पर ग़ौर कीजिए तो मालूम होता है कि इस्लाम अगर किसी चीज़ का नाम है तो वह सिर्फ़ सत्य की दावत है और मुसलमान के जीवन का अगर कोई मक़सद है तो वह सिर्फ़ भलाई का हुक्म और बुराई से रोकना है। क़ुरआन मजीद में मुसलमानों के जीवन का उद्देश्य यह बताया गया है—

> "दुनिया में वह बेहतरीन गरोह तुम हो जिसे इनसानों की हिदायत (मार्ग-दर्शन) और सुधार के लिए मैदान में लाया गया है। तुम नेकी का हुक्म देते हो और बदी से रोकते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-110)

और दुनिया के लिए उसके वुजूद की ज़रूरत सिर्फ़ यह ज़ाहिर की गई है—

> "तुम में कुछ लोग तो ऐसे ज़रूर ही होने चाहिएँ जो नेकी की तरफ़ बुलाएँ, भलाई का हुक्म दें और बुराइयों से रोकते रहें।"
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-104)

जगह-जगह हुक्म दिया गया है—

> "ऐ नबी! अपने रब के रास्ते की तरफ़ दावत दो, हिकमत और अच्छी नसीहत के साथ।"
> (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-125)

> "बस तुम क़ुरआन के ज़रिए से हर उस आदमी को नसीहत करो जो मेरी चेतावनी से डरे।" (क़ुरआन, सूरा-50 क़ाफ़, आयत-45)

> "और ऐ नबी! नसीहत किए जाओ बस तुम नसीहत ही करने वाले हो।" (क़ुरआन, सूरा-88 ग़ाशिया, आयत-21)

यही शिक्षा थी कि जिसका असर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के जीवन पर सबसे अधिक हावी था और इसी ने सहाबा (रज़ि॰) की ज़िन्दगियों को बिल्कुल बदल दिया था। उनकी पाक ज़िन्दगियाँ सरापा दावत और तबलीग़ थीं। उनका उठना-बैठना, चलना-फिरना ग़रज़ हर काम अपने अन्दर यह

सार्थक उद्देश्य रखता था कि .खुदा की तरफ़ लोगों को बुलाएँ और अल्लाह के बन्दों को सीधे रास्ते पर चलने की नसीहत करें।

जब तक मुसलमानों में क़ुरआन मजीद और नबी (सल्ल॰) की सुन्नत की उन शिक्षाओं का असर बाक़ी रहा उस वक़्त तक हर मुसलमान का जीवन एक प्रचारक और प्रसारक का-सा जीवन रहा। उन्होंने उद्योग-धंधा, व्यापार, खेती-बाड़ी, हुकूमत और दुनिया के सारे काम किए, मगर दिल में यह लगन रही कि इस्लाम की जो नेमत .खुदा ने उनको प्रदान की है उससे सम्पूर्ण मानव-जाति को भाग्यशाली बनाने की कोशिश करें। वे वास्तविक रूप से इस्लाम को सारी दुनिया के लिए बेहतरीन नेमत समझते थे और इसलिए उनका ईमान था कि हर इनसान तक इस नेमत को पहुँचाना उनका फ़र्ज़ है। जो व्यक्ति जिस हाल में था उसी हाल में वह यह फ़र्ज़ पूरा करता था। व्यापारियों ने व्यापार के काम में, मुसाफ़िरों ने अपने सफ़र के दौरान में, क़ैदियों ने जेलों में, मुलाज़िमों ने अपने दफ़्तरों में और किसानों ने अपने खेतों में यह पवित्र सेवा अंजाम दी। और यह अभिरुचि (शौक़) इस हद तक तरक़्क़ी कर गई कि औरतों तक ने निहायत पाबन्दी और सरगर्मी के साथ इस्लाम का प्रचार-प्रसार किया।

इस्लाम की ताक़त का अस्ल स्रोत

यही अभिरुचि (शौक़) हक़ीक़त में इस्लाम की शक्ति का अस्ल स्रोत थी। आज जो दुनिया में करोड़ों मुसलमान नज़र आ रहे हैं और दुनिया की विभिन्न नस्लों, क़ौमों और विभिन्न देशों पर इस्लाम की हुकूमत क़ायम है वह सिर्फ़ इसी तबलीग़ी ज़ौक़ (प्रचारक अभिरुचि) का ही नतीजा है।

इस्लाम के दुश्मन कहते हैं कि इसका प्रचार-प्रसार सिर्फ़ तलवार के द्वारा हुआ है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि इस्लाम सिर्फ़ प्रचार-प्रसार (तबलीग़) के ज़रिए ही फैला है। अगर इसकी ज़िन्दगी तलवार पर ही निर्भर होती तो वह तलवार ही से मिट भी जाती और अब तक इस्लाम के दुश्मनों ने तलवार से इस पर जितने हमले किए हैं वे उसे .खत्म करने में बिल्कुल सफल हो जाते। मगर हम देखते हैं कि कई बार ऐसा हुआ है कि तलवार के सामने

तो इसने हार मान ली है लेकिन तबलीग़ और प्रचार के मैदान में इसने हमेशा जीत हासिल की है। एक तरफ़ बग़दाद में क़त्ले-आम जारी था और दूसरी तरफ़ सुमात्रा में इस्लाम की हुकूमत क़ायम हो रही थी। एक तरफ़ क़ुरतुबा (Cordova), अन्दलुस (स्पेन) से इस्लाम मिटाया जा रहा था और दूसरी तरफ़ जावा में उसको एक नया जीवन प्राप्त हो रहा था। एक तरफ़ तातारी उसके गले पर छुरी फेर रहे थे और दूसरी तरफ़ वह ख़ुद उनके दिलों को फ़तह कर रहा था। एक तरफ़ तुर्क उसे ग़ुलामी का तौक़ पहना रहे थे और दूसरी तरफ़ ख़ुद उनके दिल अपने-आपको उसकी ग़ुलामी के लिए पेश कर रहे थे।

अगर यह उसकी तबलीग़ की फ़तह नहीं थी तो और क्या थी? आज इस्लाम की वे जीतें जिन्हें तलवार की जीतें कहा जा सकता है दुनिया से मिट चुकी हैं। स्पेन फ़ना हो चुका, सिक़्लिया (Sicily) मिट गया, यूनान तबाह हो गया मगर मध्य अफ़्रीक़ा, जावा, सुमात्रा, चीन और मलाया द्वीप समूह जिन्हें उसने प्रचार के हथियार से फ़तह किया है ज्यों के त्यों मौजूद हैं और इस बात की गवाही दे रहे हैं कि इस्लाम का जीवन, प्रचार और सिर्फ़ प्रचार पर निर्भर है। फिर क्या यह प्रचार मिशनरी सोसायटियों के द्वारा किया गया था? क्या ये महान जीतें इसी बेअमल चीख़-पुकार के ज़रिए हासिल हुई थीं, जिसमें आज हम पूरी तरह व्यस्त हैं? क्या इस्लाम की दुनिया में हर जगह मौजूदगी इन पत्र-पत्रिकाओं के छापने, उन काग़ज़ी लड़ाइयों, और इन क़लमी हमलों की देन है जिन्हें हमने ईसाई प्रचारकों के अनुपालन में अपना लिया है? इतिहास इसका जवाब नहीं में देता है। इस लेख में हम इसी मसले पर बहस करना चाहते हैं।

अध्याय-2

इस्लाम-प्रसार के कारण

अगर घटनाओं और हक़ीक़तों का विश्लेषण किया जाए तो मालूम होता है कि इस्लाम के प्रसार में तीन चीज़ें अनिवार्य तत्व की हैसियत से शामिल हैं।

एक उसके सादा अक़ीदे और मनभावन इबादतें। दूसरी मुसलमानों की जिन्दगी में उसकी तालीम (शिक्षा) के हैरत-अंगेज़ नतीजे और तीसरी मुसलमानों का प्रचार करने का शौक़।

पहली चीज़ अक़्ल (बुद्धि) से अपील करती है, दूसरी भावनाओं को उभारती है और तीसरी चीज़ एक शुभचिन्तक मार्गदर्शक की तरह भूले-भटकों को सही रास्ते पर लगाती है। जिस तरह बाज़ार में एक माल के पसन्दीदा होने के लिए सिर्फ़ इतनी बात काफ़ी नहीं है कि उसके अन्दर ख़ूबियाँ हैं बल्कि इसके लिए ऐसे कार्यकर्ताओं की ज़रूरत भी होती है जो उसकी ख़ूबियाँ और फ़ायदे लोगों के दिलो-दिमाग़ में बिठा सकें और ऐसे गवाह दरकार होते हैं जो अपने अन्दर उसके फ़ायदों की अमली गवाही दें। इसी तरह दुनिया में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए भी इन तीनों चीज़ों के समान रूप से मिल-जुलकर काम करने की आवश्यकता रही है और जब कभी इसमें किसी एक की भी कमी रह गई है तो इस्लाम-प्रसार की तेज़ रफ़्तारी पर इसका असर ज़रूर पड़ा है। ये तीनों चीज़ें किस तरह अपना काम करती हैं और इनके संयुक्त व्यवहार (अमल) से क्या नतीजे सामने आते हैं, इसको जानने के लिए कुछ और विस्तार की आवश्यकता है।

इस्लामी अक़ीदों की सादगी और फ़ितरत से तालमेल

इस्लामी अक़ीदे (आस्थाएँ) इतने सादा और दिलनशीन हैं कि एक मामूली से मामूली अक़्ल का इनसान भी उन्हें तस्लीम करने के लिए तैयार

हो जाता है। न उनके अन्दर किसी प्रकार की जटिल दार्शनिकता है, न उनमें किसी तरह के गुमानों और वहमों से काम लिया गया है, न उनके अन्दर बेकार की बातों का दख़ल है। कुछ निहायत साफ़ और सीधे से नियम हैं जिन्हें अक़्ल बहुत आसानी से क़बूल कर लेती है और जिन्हें मान लेने के बाद इनसान को अपने अन्दर ख़ुद एक हैरतअंगेज़ इन्क़िलाब महसूस होने लगता है। इन सब बातों के साथ उनकी एक बड़ी ख़ूबी यह है कि हर चीज़ निहायत साफ़ और निश्चित है, जिसके अन्दर किसी प्रकार की आशंकाएँ नहीं हैं। ख़ुदा के बारे में उसने बिल्कुल स्पष्ट अक़ीदा पेश किया है—

"तुम्हारा ख़ुदा वही एक ख़ुदा है।"
(क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-108)

इसमें दो होने की हरगिज़ आशंका नहीं है—

"दो ख़ुदा न बना लो।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-51)

और उसके लिए किसी मददगार की भी ज़रूरत नहीं है क्योंकि—

"वह हर चीज़ पर क़ादिर है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-20)

"अल्लाह को अधिकार है कि जो चाहे करे।"
(क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-27)

"बेशक अल्लाह जो चाहता है हुक्म देता है।"
(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-1)

"उसकी ज़ात (हस्ती), माँ-बाप और बच्चों से भी पाक है और कोई उसका हमसर (बराबर) नहीं।"
(क़ुरआन, सूरा-112 इख़लास, आयत-3,4)

उसे किसी प्रकार की इनसानी बीमारी और ज़रूरतें पेश नहीं आतीं—

"वह ज़िन्दा-जावेद हस्ती (जीवन्त सत्ता) है, सारी कायनात को सँभाले हुए है। वह न तो सोता है और न उसे ऊँघ लगती है।"
(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-255)

आकाश और धरती में उसके सिवा कोई ताक़त (शक्ति) ऐसी नहीं है, जिससे इनसान मदद और सहायता की माँग कर सकता हो—

"क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आसमानों और ज़मीन की बादशाही अल्लाह की है। उसके सिवा न तो तुम्हारा कोई कारसाज़ है और न कोई मददगार।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-107)

वही इस क़ाबिल है कि उसकी इबादत की जाए—

"तो अल्लाह ही की बन्दगी करो, धर्म को उसी के लिए ख़ालिस करते हुए।" (क़ुरआन, सूरा-39 ज़ुमर, आयत-2)

इसी तरह पैग़म्बरी के बारे में भी उसने किसी प्रकार से पैग़म्बर के ईश्वर (ख़ुदा) होने की आशंका शेष नहीं रखी है और निहायत सफ़ाई के साथ यह अक़ीदा पेश किया है कि पैग़म्बर एक इनसान के सिवा और कुछ नहीं होता, जिसे ख़ुदा ने अपने बन्दों तक अपना पैग़ाम पहुँचाने के लिए चयन कर लिया है—

"मैं तो एक इनसान हूँ तुम्हीं जैसा, मेरी तरफ़ वह्य (प्रकाशना) की जाती है।" (क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-110)

"और हर क़ौम के लिए ख़ुदा ने एक हिदायत देनेवाला यानी पैग़म्बर भेजा है।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअ्द, आयत-7)

आमाल (कर्मों) और उनकी ज़िम्मेदारी के बारे में उसने पूरी सफ़ाई के साथ ख़बरदार किया है कि यहाँ कोई कफ़्फ़ारा और बदल नहीं है—

"हर आदमी अपने कर्मों का ख़ुद ज़िम्मेदार है और जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही अच्छा या बुरा बदला मिलेगा।"
(क़ुरआन, सूरा-99 ज़िलज़ाल, आयत-7, 8)

आख़िरत (परलोक) के बारे में इस्लाम ने ऐसा साफ़ और स्पष्ट अक़ीदा पेश किया है कि किसी धर्म ने भी नहीं किया। न इसमें बुद्ध-धर्म के जैसा नजात का फ़लसफ़ा है, जो अक़्ल से परे है, न वैदिक धर्म का पेच-दर-पेच आवागमन का दर्शन और न ही नास्तिकता का वह अक़ीदा जिसमें

कहा गया कि मरने के बाद सब-कुछ विनष्ट हो जानेवाला है। कोई स्वर्ग-नरक नहीं है। इस्लाम में तो बहुत ही वज़ाहत (स्पष्टता) के साथ यह अक़ीदा पेश किया गया है कि इनसान अपने वर्तमान जीवन के कर्मों का नतीजा आनेवाले जीवन में देखेगा और अस्ली जीवन वही होगा।

ये अक़ीदे (आस्थाएँ) इतने सीधे-सादे हैं कि इनसानी अक़्ल इन्हें आसानी के साथ क़बूल कर लेती है और इस्लामी प्रचारकों को हमेशा अपने प्रचार-प्रसार में इसलिए सफलता मिलती है कि वे कोई ऐसी पेचीदा चीज़ पेश नहीं करते जिसे मान लेने से अक़्ल इनकार करती हो। एक सुप्रसिद्ध फ़्रांसीसी विद्वान प्रोफ़ेसर मान्टेट इन अक़ीदों के बारे में लिखता है—

"ऐसा अक़ीदा जो इतना स्पष्ट, साफ़, दार्शनिकता की पेचीदगियों से इतना पाक कि इतनी मामूली अक़्ल में आ जाने के क़ाबिल हो, उसमें यक़ीनन इनसानी नफ़्स को अपने वशीभूत कर लेने की चामत्कारिक शक्ति होनी चाहिए और हक़ीक़त में वह ऐसी शक्ति रखता है।"

मानव-बुद्धि पर इन अक़ीदों का कितना गहरा प्रभाव पड़ता है इसका अन्दाज़ा बहुत ही आसानी के साथ इस घटना से हो सकता है कि एक बार एक यूरोपीय-पर्यटक अफ़्रीका की 'गाला' क़ौम के एक आज़ाद किए हुए ग़ुलाम से मिला जिसे बचपन में ज़न्ज के तट से पकड़ कर जिद्दा में बेच दिया गया था। सैलानी ने उससे पूछा कि क्या तुम्हारे दिल में उन लोगों के लिए कोई नफ़रत नहीं है जिन्होंने तुमको बिना किसी अधिकार के पकड़कर जानवरों की तरह बेच दिया? इसके जवाब में उस हब्शी ग़ुलाम ने कहा—

"हाँ मेरे दिल में स्वभावतः उनकी तरफ़ से रंज (क्रोध) मौजूद है मगर एक चीज़ ने उसकी भरपाई कर दी है, और वह यह है कि मैं उनकी बदौलत कुफ़्र की जिहालत से निकल गया हूँ। मैं इसे ख़ुदा का फ़ज़्ल और करम समझता हूँ कि मैं इस मुल्क (देश) में लाया गया और मुझे इस्लाम की नेमत हासिल हुई। यक़ीन कीजिए कि ईमान की मिठास से बढ़कर कोई मिठास नहीं है और यह ऐसी मिठास है जिसे सिर्फ़ दिल ही महसूस करता है, ज़बान से इसका बयान कर पाना सम्भव नहीं।"

इस्लामी इबादतों को दिलकशी और आकर्षण

यही हाल इस्लामी इबादतों का है। इनमें कुछ ऐसी दिलकशी और आकर्षण-शक्ति भरी हुई है कि मान्टेस्क्यू के कथनानुसार कोई दिल उनसे प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रह सकता। इस्कन्दरिया (Alexandria) के यहूदी धर्म त्यागकर इस्लाम क़बूल कर लेनेवाले सईद-बिन-हसन ने लिखा है—

"मैं सिर्फ़ मुसलमानों की इबादत को देखकर मुसलमान हुआ हूँ। एक बार मैं जामा मस्जिद में नमाज़ का मंज़र (दृश्य) देखने लगा। सबसे पहले जिस चीज़ ने मेरे दिल पर असर किया वह .ख़ुतबा (भाषण) था। उसका एक-एक शब्द मेरे दिल पर असर कर रहा था और विशेष रूप से जब .ख़ुतबा देनेवाले ने कहा—

> "अल्लाह न्याय और उपकार का और नातेदारों को उनके हक़ देने का हुक्म देता है और बुराई और अश्लीलता और ज़ुल्म व ज़्यादती से रोकता है।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-90)

तो फिर मेरे दिल में ऐसे मज़हब (धर्म) की बेहद इज़्ज़त क़ायम हो गई, जिसका .ख़ुदा इतनी महान शिक्षा देता हो। फिर जब नमाज़ शुरू हुई और मुसलमान क़तारें बाँधकर खड़े हुए तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि ये फ़रिश्ते हैं जिनके सामने .ख़ुदा तमाम परदों से निकलकर पूरी तरह आ गया है और मेरे दिल ने कहा कि अगर .ख़ुदा ने दो बार बनी-इसराईल से बात की थी तो इस क़ौम के साथ वह रोज़ाना कलाम किया करता है।"

नमाज़ की यह शान कि इसके लिए न किसी पुरोहित की पाबन्दी है और न पादरी की, न किसी मन्दिर की शर्त है और न गिरजा की। हर मुसलमान इमाम बन सकता है। हर जगह उसकी मस्जिद है और हर आदमी बिना किसी ज़ात-पात, नस्ल के भेद-भाव के इसमें शामिल हो सकता है। नमाज़ इतना असर अपने अन्दर रखती है कि कट्टर से कट्टर इस्लाम के दुश्मन भी इसकी तारीफ़ (प्रशंसा) करने पर मजबूर हो जाते हैं। एक अनदेखे .ख़ुदा की इबादत इस अन्दाज़ के साथ कि सिर्फ़ उसकी दिमाग़ी कल्पना से दिलों पर विनम्रता छाई हुई है और तमाम क्रिया-कलापों से अति महानता

और भय के लक्षण नुमाया हैं, पत्थर से पत्थर दिल को भी मोम कर देती है। पादरी 'ली फ़ाय' जिससे भारतीय आलिमों (विद्वानों) के ज़बरदस्त मुनाज़िरे (शास्त्रार्थ) शायद अभी तक लोगों की याद में सुरक्षित हों, अपनी किताब 'मैनकाइंड एण्ड चर्च' (Mankind And Church) में लिखता है—

"कोई आदमी मुसलमानों की इस इबादत को देखकर इसके असर से प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रह सकता। जब वह देखता है कि मुसलमान चाहे कहीं भी हो, सड़क पर चल रहा हो, रेलवे स्टेशन पर हो, दुकान पर बैठा हो, या मैदान में टहल रहा हो, अज़ान होते ही सब काम छोड़ देता है और एक ख़ुदा के आगे झुक जाता है। विशेष रूप से जिस व्यक्ति ने दिल्ली की जामा मस्जिद में 'अलविदाअ' (रमज़ान महीने का आख़िरी जुमा) के दिन पन्द्रह-बीस हज़ार मुसलमानों को निहायत ख़ामोशी (शान्ति) और विनम्रता के साथ देखा हो वह उस दृश्य से प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रह सकता। उसके दिल में उस शक्ति का एहसास ज़रूर पैदा होता है जो इस धार्मिक व्यवस्था में काम कर रही है। इसके अलावा मुसलमानों की रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ की क्रमबद्धता और इन्तिहाई शोरो-ग़ुल के वक़्तों में भी उनका सुकून और इत्मीनान से अपना फ़र्ज़ अदा करना अपने अन्दर एक ख़ास पैग़ाम रखता है।"

इस्लामी शिक्षाओं का प्रभाव मुसलमानों की ज़िन्दगी पर

अक़ीदों (आस्थाओं) और इबादतों के बाद दूसरी चीज़ जो अपनी अमली तासीर (प्रभाव) के एतिबार से इस्लाम के प्रसार में सबसे ज़्यादा कारगर शक्ति है वह मुसलमानों की इस्लामी ज़िन्दगी है। इस्लाम अगर सिर्फ़ उसूल ही पेश करता और उसकी शिक्षाओं में इन्क़िलाब पैदा करनेवाली बातें न होतीं जिन्होंने जंगली से जंगली क़ौमों को भी मानवता के उच्चतम दर्जे तक पहुँचा दिया तो शायद दुनिया उसकी तरफ़ बहुत कम माइल होती, लेकिन उसने उसूल के साथ अमल भी पेश किए हैं और सत्य यह है कि यह उन्हीं की चुम्बकीय शक्ति है जो दिलों को इस तरफ़ खींचती है।

.ख़ुदा की वहदानियत (ऐकेश्वरवाद), उसकी क़ुदरत और सिर्फ़ उसी की मदद का पात्र होने से सम्बन्धित इस्लाम की शिक्षाओं ने मुसलमानों को इतना स्वाभिमानी, इतना धैर्यवान और शुक्रगुज़ार और इतना सहनशील व दृढ़ स्वभाव बना दिया है कि वे न किसी से दुनिया में डरते हैं और न किसी के आगे हाथ फैलाते हैं और न किसी बड़ी से बड़ी मुसीबत के मुक़ाबले में मायूस होते हैं। जज़ा व सज़ा और आख़िरत के दिन के बारे में इस्लाम की शिक्षा (तालीम) ने उनके अन्दर इतनी वीरता और बहादुरी पैदा कर दी है कि वे अपनी मौजूदा ज़िन्दगी को फ़ानी (नश्वर) समझकर हर वक़्त उसे .ख़ुदा के नाम पर क़ुरबान कर देने के लिए तैयार रहते हैं और उनके .ख़ून की गर्मी दुनिया में अपना जवाब नहीं रखती। परहेज़गारी और तरक़्क़ी (प्रगति) के बारे में इस्लामी शिक्षाओं ने उनके अन्दर ग़ैर-मामूली परहेज़गारी और संयम पैदा कर दिया है और शराब, चोरी और नैतिक अपराधों से बचने में वे तमाम धर्मों के अनुयायियों से आगे बढ़े हुए हैं। इनसानी बराबरी और इस्लामी भाई-चारे के बारे में इस्लाम की तालीम ने उनके अन्दर ऐसी जमहूरी रूह (लोकतांत्रिक आत्मा) फूँक दी है कि न उनके यहाँ नस्ल व रंग का भेदभाव है, न ज़ात-पात की क़ैद, न अमीर-ग़रीब का फ़र्क़ और न देशी-विदेशी का भेदभाव। हर आदमी इस्लाम क़बूल कर लेने के बाद इस्लामी बिरादरी का एक सदस्य बन जाता है, चाहे वह काला हो या गोरा, धनी हो या निर्धन, मालिक हो या ग़ुलाम, हर हालत में मुसलमान उसको अपना भाई समझने पर मजबूर हैं और वह नमाज़ में बड़े से बड़े मुसलमान के बराबर खड़ा होने का हक़ रखता है।

इसके अलावा मुसलमानों की ज़िन्दगी में दूसरी इस्लामी शिक्षाओं के प्रभाव भी बहुत ही नुमायाँ हैसियत रखते हैं। मिसाल के तौर पर यह वह इल्म और तहज़ीब (सभ्यता) व तमद्दुन (संस्कृति) है जो इस्लाम क़बूल करते ही वहशी से वहशी क़ौमों में घर कर लेता है। यूरोप के ईसाई-प्रचारक यह देखकर हैरान रह गए कि अफ़्रीक़ा की असभ्य से असभ्य क़ौमों में इस्लाम की तबलीग़ के साथ-साथ नागरिकता की .ख़ूबियाँ भी पैदा होती चली जाती हैं। मस्जिदों का निर्माण, स्कूलों की स्थापना, सामाजिक जीवन और इसके

साथ तिजारत (व्यापार) और ख़ुशहाली की तरक़्क़ी, ये ऐसी चीज़ें हैं जो धीरे-धीरे इस्लाम के प्रसार के साथ अफ़्रीक़ा के असभ्य जीवन को सभ्य और एक नगरीय जीवन से बदल देती हैं और उन्हें देखकर दूसरी असभ्य क़ौमों को भी वही मज़हब क़बूल कर लेने की ख़ाहिश होती है जो उनके अपने जैसे लोगों को इतनी जल्दी इतने बुलन्द दर्जे पर पहुँचा देता है। इतिहास में यह घटना मशहूर है कि छठी सदी हिजरी में जब उत्तरी नाइजीरिया का सबसे ज़्यादा ताक़तवर राज्य जिनी (Jenne) में बरबरों ने इस्लाम का प्रचार-प्रसार आरम्भ किया तो वहाँ बहुत तेज़ी से आलिम और विद्वान पैदा हो गए और जब बादशाह ने इस्लाम क़बूल करने के लिए एक सभा का आयोजन किया तो उसमें दो हज़ार चार सौ आलिमों ने शिरकत की। इस्लाम के सभ्य बनानेवाले इन प्रभावों ने अरब, भारत, मिस्र (Egypt) और स्पेन (अन्दलुस) में जो हैरतअंगेज़ निशान छोड़े हैं उनके बयान की यहाँ ज़रूरत नहीं। इतिहास और अवशेषों पर उनके निहायत स्पष्ट साक्ष्य मौजूद हैं।

इस्लामी बराबरी का असर

इस्लामी जीवन में सबसे ज़्यादा प्रभावशील वस्तु समता (समानता और बराबरी) है। वह उन तमाम क़ौमों के लिए एक ईश्वरीय वरदान है, जिन्हें रस्मो-रिवाज और ताक़त और हुकूमत की ख़ुदग़र्ज़ी ने इनसानियत की आम सतह से नीचे रहने पर मजबूर कर दिया है। इस्लाम उनके लिए मुक्ति-सन्देश का आदेश रखता है और ज़माना साक्षी है कि उसने ऐसी हज़ारों क़ौमों को इन्तिहाई ज़िल्लत से उठाकर आकाश के उच्चतम सम्मान और शराफ़त तक पहुँचा दिया है। समानता की इस शान ने इस्लाम के प्रसार में सबसे ज़्यादा हिस्सा लिया और लगभग उन तमाम इलाक़ों में जहाँ ऐसी मज़लूम (पीड़ित) क़ौमें रहती हैं, इस्लाम की लोकप्रियता का एक मात्र साधन यही चीज़ है। सर विलियम हन्टर (Sir William Hunter) बंगाल की दलित क़ौमों में इस्लाम-प्रसार के बारे में लिखते हैं—

"उन ग़रीब मछेरों, शिकारियों और दलित किसानों के लिए इस्लाम एक ईश्वरीय वरदान बनकर अवतरित हुआ। वह न सिर्फ़ शासक क़ौम का

मज़हब (धर्म) था बल्कि उसमें इतनी समानता भी थी कि वे उसकी बदौलत ख़ुद उन लोगों से भी ज़्यादा बुलन्द दर्जा हासिल कर सकते थे, जो उन्हें ज़लील (पतित) मानते थे। इस आधार पर इस्लाम देश के सबसे ज़्यादा ख़ुशहाल और सम्पन्न प्रान्त पर क़ाबिज़ हो गया। फिर भी इतिहास में कहीं-कहीं बलपूर्वक इस्लाम-प्रसार की मिसालें भी मिलती हैं। मगर अस्ल में ताक़त वह चीज़ नहीं है जिसका इस्लाम ममनून (आभारी) है, बल्कि वे ख़ुद उसकी ख़ूबियाँ हैं। उसने बंगालवालों की अक़्ल को अपील किया, उनके सामने इनसानियत (मानवता) का एक उच्चतम भाव पेश किया। इनसानी बिरादरी का एक ऐसा अजीब-उसूल क़ायम किया जिससे वे बिल्कुल अनभिज्ञ थे और जात-पात के बन्धनों को बिल्कुल तोड़ दिया।"

दक्षिणी भारत में ज़्यादातर इसी समानता की बदौलत इस्लाम ने हिन्दुत्व पर विजय पाई है। आज से बीस-पच्चीस साल पहले टिनावैली के इलाक़े में जो घटना पेश आई थी, वह इस विजय का एक शिक्षाप्रद नमूना है। उस इलाक़े में शुनार नामक एक क़ौम रहती है, जिसकी गणना नीच क़ौमों में होती थी। अपनी हुनरमन्दी और मुस्तैदी की बदौलत उसने काफ़ी धन अर्जित किया और शिक्षा और सामाजिक रहन-सहन के एतिबार से आम हिन्दुओं के मुक़ाबले में उसका दर्जा बहुत ऊँचा हो गया, मगर फिर भी हिन्दू उसके साथ वही अपमानजनक व्यवहार करते रहे जो अछूतों के साथ वे आमतौर पर करते हैं। इससे शुनारों की भावनाओं को बहुत आघात पहुँचता था और उनके दिल हिन्दू धर्म से फिरते जाते थे। आख़िर एक बार हिन्दुओं से उनकी भयानक लड़ाई हुई और कुछ शुनारों के एक मन्दिर में घुस जाने पर हिन्दुओं ने उनको बहुत ज़्यादा मारा-पीटा। इस पर तमाम शुनारों ने मुसलमान होने का फ़ैसला कर लिया। लगभग छः सौ शुनार उसी तारीख़ को मुसलमान हो गए और ज्यों-ज्यों आसपास के देहातों में इस घटना की सूचना पहुँचती गई शुनार-जाति के लोग इस्लाम क़बूल करते चले गए।

अफ़्रीक़ा के हब्शियों में भी यही इनसानी बराबरी और इस्लामी भाईचारा इस्लाम की सबसे प्रभावशाली शक्ति है। मिस्टर ब्लाइडन अपनी किताब

"ईसाइयत, इस्लाम और नीग्रो नस्ल" (Christianity, Islam And Negro Race) में लिखते हैं—

"ज्यों ही किसी मूर्तिपूजक हब्शी के बारे में मुहम्मद (सल्ल॰) के अनुयायियों को मालूम होता है कि वह इस्लाम लाने का इरादा रखता है तो चाहे कितना ही जंगली और नीच दर्जे का आदमी क्यों न हो उसे तुरन्त अपनी बिरादरी में एक बराबर के सदस्य की हैसियत से शामिल कर लिया जाता है और सिर्फ़ दिलजोई ही के लिए नहीं बल्कि वास्तविक रूप से भाई समझकर उसका इतना आदर-सत्कार किया जाता है कि वह बहुत जल्दी अपने लिए इस्लाम में ग़ैर-मामूली नेमतों को महसूस कर लेता है। अफ़्रीक़ा में इस्लाम को ईसाइयत पर जो बढ़ोत्तरी हासिल है उसकी सबसे बड़ी वजह यही है।"

अध्याय-3

इस्लाम-प्रचारकों की महान सेवाएँ

पिछले पृष्ठों में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के दो महत्वपूर्ण कारणों के बारे में वार्ता की जा चुकी है। अब उसके अमली पहलू पर नज़र डालकर देखना चाहिए कि उस आसमानी सच्चाई पर ईमान लानेवालों ने उसके प्रकाश को संसार के हर भू-भाग में फैलाने के लिए क्या-क्या कोशिशें की हैं। इसमें कोई शक नहीं कि अस्ल चीज़ तो वही इस्लाम की अपनी .खूबियाँ और व्यावहारिक अच्छाइयाँ हैं जो हर विशुद्ध हृदय से उसको एक सच्चा दीन (सत्यधर्म) क़बूल करा लेती हैं। लेकिन संसार के अवलोकन में हम रात-दिन देखते हैं कि अच्छे से अच्छा सामान भी, अगर उसका विज्ञापन न हो तो, रखा ही रह जाता है और बेचनेवाले कार्यकर्ता (Agents) .खराब से .खराब सामान के .खरीदार भी बाज़ार में पैदा कर लेते हैं। जब तक किसी चीज़ की विशेषताओं और मुनाफ़ों को लोगों तक पहुँचाया न जाए और दिलों में उसके लिए शौक़ पैदा न किया जाए उस वक़्त तक कुछ .खास तबीअत के लोगों के सिवा आम तबीअत के लोग उसकी तरफ़ कम ही रुजू करते हैं और इसी लिए हर सामान की कामयाबी आमतौर से उसके सौदागरों की सरगर्मी, तत्परता और विज्ञापन-शक्ति पर निर्भर हुआ करती है। यही उसूल और सिद्धान्त धर्मों के प्रसार पर भी समान रूप से लागू होता है। इस्लाम चाहे कितना ही सच्चा और अच्छा मज़हब हो मगर उसके प्रचार-प्रसार के लिए सिर्फ़ उसकी निजी .खूबियाँ हीं काफ़ी नहीं हो सकतीं, बल्कि यह भी ज़रूरी है कि उसके अनुयायियों में उसके प्रचार-प्रसार का ज़ौक़-शौक़ भी मौजूद हो। बल्कि ज़्यादा सही तौर पर यह प्रचार करने का शौक़ (अभिरुचि) इस्लाम के तीनों स्तम्भों में व्यावहारिक स्तम्भ की हैसियत रखता है।

मुसलमानों के अन्दर पूरी दुनिया में हक़ को पहुँचा देने का ज़ौक़-शौक़

आज हम बेअमल मुसलमान उस हैरत-अंगेज़ तबलीग़ (प्रचार) के ज़ौक़ की ठीक-ठीक कल्पना भी नहीं कर सकते जो पिछले ज़माने के दीनदार मुसलमानों में काम कर रहा था और जो हमारे मौजूदा ज़माने में भी अफ़्रीक़ा, चीन[1] और मलाया-द्वीप समूह के मुसलमानों में काम कर रहा है। उन लोगों की ज़िन्दगी के कामों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम अगर कोई था तो वह सिर्फ़ इस दीन (धर्म) की सच्चाई को मानव-जाति के ज़्यादा से ज़्यादा व्यक्तियों तक पहुँचाना था, जिसकी रौशनी से उनके दिल रौशन थे। उनके दिलों पर यह अक़ीदा पत्थर की लकीर बना हुआ था कि मुसलमान की हैसियत से उनके जीवन का मक़सद सिर्फ़ भलाई की तरफ़ बुलाना, नेकी का हुक्म देना और बुराई से रोकना था। वे जहाँ जाते थे यह मक़सद उनके साथ जाता था और उनके जीवन के हर काम में इसकी शिरकत लाज़मी थी। वे क़ुरैश के अत्याचारों से भागकर हब्शा गए तो वहाँ भी उन्होंने सिर्फ़ यही काम किया। उन्हें मक्का से निकलकर मदीना में अमन की जिन्दगी नसीब हुई तो अपनी तमाम शक्तियाँ उन्होंने अल्लाह के इसी दीन के प्रचार- प्रसार में लगा दीं। उनको सासानी और रोमानी तहज़ीबों के जर्जर महलों को गिरा देने की ख़िदमत प्रदान की गई तो शाम व इराक़ और ईरान व रोम में भी उन्होंने अपनी सिर्फ़ यही पवित्र ज़िम्मेदारी निभाई। उन्हें ख़ुदा ने ज़मीन की ख़िलाफ़त प्रदान की तो उससे भी उन्होंने ऐशपरस्ती नहीं की बल्कि वे अल्लाह के दीन (धर्म) का प्रसार करते चले गए, यहाँ तक कि एक तरफ़ अटलांटिक महासागर की तूफ़ानी मौजों (लहरों) ने उन्हें रोक दिया और दूसरी तरफ़ चीन की संगीन दीवार उनके रास्ते में खड़ी हो गई। वे अपने व्यापार का माल लेकर निकले तो उसमें भी उनके दिलों पर यही ख़ाहिश छाई रही और उन्होंने अफ़्रीक़ा के तपते हुए रेगिस्तानों में, भारत की लहलहाती वादियों में, प्रशान्त महासागर के दूर-दराज़ द्वीप-समूहों में और यूरोप की अंग्रेज क़ौमों में इस्लाम के प्रकाश को फैला दिया।

1. यह उस ज़माने की बात है जब चीन पर कम्युनिस्टों का क़ब्ज़ा नहीं हुआ था।

सत्य के प्रचार-प्रसार का यह ज़ौक़-शौक़ यहाँ तक तरक़्क़ी कर गया था कि जेलखानों की सख़्त से सख़्त मुसीबतें झेलते वक़्त भी उनके दिलों से इसकी लज़्ज़त जाती नहीं थी। वे अंधेरी कोठरियों में अपने क़ैदी साथियों को भी इस्लाम की तरफ़ बुलाते थे और हद यह है कि फाँसी के फंदे पर भी अगर उन्हें किसी चीज़ की तमन्ना सताती थी तो वह सिर्फ़ यही थी कि अपने जीवन के अन्तिम क्षणों को भी अल्लाह का पैग़ाम उसके बन्दों तक पहुँचाने में लगा दें।

बेलजियन काँगो की एक घटना मशहूर है कि जब बेलजियम की हुकूमत ने वहाँ के एक मुसलमान अमीर को गिरफ़्तार करके मौत की सज़ा का हुक्म सुना दिया तो उसने दुनिया से चलते-चलते ख़ुद उस पादरी को भी मुसलमान कर लिया जो उसे ईसाइयत का मुक्ति-सन्देश देने गया था।

हज़रत सैयद मुजद्दिद अहमद सरहिन्दी (रह॰) के बारे में इतिहास की किताबों में लिखा है कि बादशाह जहाँगीर की क़ैद में दो साल का ज़माना उन्होंने सिर्फ़ प्रचार-प्रसार के फ़र्ज़ को अदा करने में गुज़ारा और जब रिहा हुए तो कई सौ हिन्दू क़ैदी उनकी बरकत से दीने-इस्लाम में दाख़िल हो चुके थे। हमारे वर्तमान समय* में भी मौलाना मुहम्मद जाफ़र थानेसरी ने, जो सरहद के मुजाहिदों से साज़-बाज़ रखने के इलज़ाम में काला पानी भेजे गए थे, अंडमान के बहुत से क़ैदियों को मुसलमान कर लिया था। पूर्वी यूरोप में तो इस्लाम का प्रसार तनहा एक मुसलमान आलिम की कोशिशों का नतीजा था जो ईसाइयों से जिहाद करता हुआ गिरफ़्तार हो गया था। क़ैद की हालत में वह ज़ंजीरों से बँधा हुआ डॉन (Dawn) और डेन्यूब (Danube) के मध्य-क्षेत्र में भेज दिया गया और वहाँ उसके निष्ठावान हृदय की रौशनी इतनी फैली कि थोड़ी ही अवधि में बारह हज़ार आदमी मुसलमान हो गए और छठी सदी हिजरी के मध्य में लगभग सारा इलाक़ा इस्लाम की बरकतों से मालामाल हो गया।

* यह ज़माना 1925 ई॰ का है।

मुस्लिम औरतों के अन्दर इस्लाम को फैलाने का ज़ौक़-शौक़

इस विश्वव्यापी अभिरुचि और शौक़ से मुसलमानों की औरतें भी .ख़ाली न थीं। तातारी मुग़लों से जिन हाथों ने मुस्लिमकुशी की तलवार छीनकर इस्लाम की फ़रमाँबरदारी का तौक़ (हार) महनाया था वे उन्हीं कमज़ोर और नाज़ुक औरतों के हाथ थे जिन्हें ये लोग इस्लामी मुल्कों से लौंडियाँ बनाकर ले गए थे। ग़ाज़ानशाह के भाई औलजात्यू .ख़ाँ को उसकी बीवी ही ने मुसलमान किया था और उसी की बदौलत एक .ख़ानी हुकूमत एक इस्लामी हुकूमत बन गई थी। चुग़ताई .ख़ानदान मुसलमानों का सबसे बड़ा दुश्मन था। मगर कुरह, हलाकू .ख़ाँ की मुसलमान बीवी ने उसे सबसे पहले इस्लाम से परिचित किया और उसी के असर से मुबारकशाह और बर्राक़ .ख़ाँ मुसलमान हुए। तातारी फ़ौजों के हज़ारों सिपाही अपने साथ मुसलमान औरतों को ले गए थे। उन्होंने अपने मज़हब (इस्लाम) को छोड़कर अपने ग़ैर-मुस्लिम शौहरों का मज़हब (धर्म) अपनाने के बजाए उन्हें और .ज़्यादातर उनके बच्चों को मुसलमान कर लिया और उन्हीं की बदौलत तमाम तातारी शहरों में इस्लाम फैल गया। इसी तरह हब्शा देश में भी औरतों ही ने इस्लाम के प्रचार-प्रसार का काम किया है। चुनांचे ऐसे अनेक हब्शी रईसों का उल्लेख इतिहास की किताबों में मिलता है जिन्हें उनकी मुसलमान बीवियों ने इस्लाम का फ़रमाँबरदार बना लिया था। सन्नूसी प्रचारकों ने तो मध्य अफ़्रीक़ा में स्थाई रूप से इस्लाम-प्रसार के लिए औरतों के इदारों (संस्थाओं) से काम लिया है। अतएव वहाँ सैकड़ों ज़नाना मदरसा (गर्ल्स स्कूल) क़ायम हैं, जिनमें लड़कियों को इस्लामी तालीम (शिक्षा) दी जाती है।

सूफ़ियों (रह॰) की सेवाएँ, हिन्दुस्तान में

मगर मुसलमानों में जो जमाअत (गरोह) सबसे .ज़्यादा अल्लाह के दीन (इस्लाम) के प्रचार-प्रसार में पूरे ज़ौक़-शौक़ से सरगर्म रही है वह वही सूफ़ियों (रह॰) की जमाअत है जो आज भारत[1] में इस तरफ़ से लगभग बिल्कुल ही ग़ाफ़िल है। .ख़ुद भारत में औलिया और सूफ़ियों ने जिस बेमिसाल मज़बूती

1. अविभाजित भारत यानी मौजूदा पाकिस्तान, बंगलादेश और भारत मुराद है।

और दीनी (धार्मिक) लगाव के साथ इस्लाम के प्रकाश को फैलाया है, वह आजकल के हमारे सूफ़ी हज़रात के लिए अपने अन्दर हिदायत की गहरी शिक्षा रखता है। यहाँ के सबसे बड़े इस्लामी प्रचारक हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन अजमेरी (रह०) थे जिनकी बरकत से राजपूताना में इस्लाम का प्रचार हुआ और जिनके मुरीद मुल्क के तमाम हिस्सों में इस्लामी हिदायत की रौशनी लेकर पहुँच गए। इन लोगों में वे लोग भी थे जो सीधे तौर पर आपके मुरीद थे और वे भी जो दूसरे ज़रिओं से आपके मुरीद बने। हज़रत ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी (रह०) दिल्ली के आसपास में, हज़रत फ़रीदुद्दीन गंजशकर (रह०) ने पंजाब के इलाक़े में, हज़रत निज़ामुद्दीन महबूबे-इलाही (रह०) ने दिल्ली और उसके आसपास में, हज़रत सैयद मुहम्मद गेसू दराज़ (रह०), हज़रत शेख़ बुरहानुद्दीन (रह०) और हज़रत शेख़ ज़ैनुद्दीन (रह०) और आख़िरी ज़माने में (औरंगाबाद के) हज़रत निज़ामुद्दीन (रह०) ने देश के दक्षिणी भाग में और बाद के अन्तिम दौर में शाह कलीमुल्लाह जहाँनाबादी (रह०) ने दिल्ली में यही भलाई की दावत और इस्लाम के हुक्मों के प्रचार-प्रसार की ख़िदमत अन्जाम दी। इनके अलावा दूसरे सिलसिलों के बड़े औलियाओं (रह०) ने भी इस काम में अनथक कोशिशें कीं। पंजाब में सबसे पहले इस्लामी प्रचारक हज़रत सैयद इसमाईल बुख़ारी (रह०) थे जो पाँचवीं सदी हिजरी में लाहौर तशरीफ़ लाए थे। उनके बारे में मशहूर है कि लोग हज़ारों की तादाद में उनके उपदेश सुनने आते थे और कोई आदमी जो एक बार उनका उपदेश सुन लेता वह इस्लाम लाए बिना न रहता। पश्चिमी पंजाब में इस्लाम के प्रसार का श्रेय सबसे ज़्यादा हज़रत बहाउलहक़ ज़करीया मुल्तानी (रह०) को हासिल है। इलाक़ा बहावलपुर और पूर्वी सिंध में सैयद जलाल बुख़ारी (रह०) की तालीमी बरकतों से हक़ को पहचानने की रौशनी फैली और उनकी औलाद में से हज़रत मख़दूम जहानियाँ (रह०) ने पंजाब के बीसियों क़बीलों को मुसलमान किया। एक और बुज़ुर्ग हज़रत सैयद जलालुद्दीन (रह०) और उनके बेटे हज़रत हसन कबीरुद्दीन (रह०) भी पंजाब के बहुत बड़े इस्लामी प्रचारक थे। हज़रत हसन कबीरुद्दीन (रह०) के बारे में इतिहास में लिखा है कि उनके व्यक्तित्व में इतना आकर्षण था कि केवल

उनको देख लेने से दिलों पर इस्लाम की महानता और सच्चाई की छाप पड़ जाती थी और लोग ख़ुद-ब-ख़ुद उनके चारों ओर जमा हो जाते थे।

सिन्ध में इस्लाम के प्रसार-प्रचार का असल ज़माना वह है जब हुकूमत का दौर ख़त्म हो चुका था। आज से लगभग छः सौ वर्ष पहले हज़रत सैयद यूसुफ़ुद्दीन (रह०) वहाँ तशरीफ़ लाए और उनके रूहानी प्रभाव से लोहाना जाति के सात सौ ख़ानदानों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। कच्छ और गुजरात में हज़रत इमाम शाह पीरानवी (रह०) और मलिक अब्दुल-लतीफ़ (रह०) की कोशिशों से इस्लाम का प्रसार हुआ। बंगाल में सबसे पहले शेख़ जलालुद्दीन तबरेज़ी (रह०) ने इस पवित्र कर्तव्य को निभाया, जो हज़रत शेख़ शहाबुद्दीन सहरवर्दी (रह०) के ख़ास मुरीदों में से थे। आसाम में इस सबसे बड़े काम को हज़रत शेख़ जलालुद्दीन फ़ारसी अपने साथ लेकर गए जो सिलहट में दफ़न हैं। कश्मीर में इस्लाम का इल्म (ज्ञान) सबसे पहले बुलबुल शाह (रह०) नामक एक दरवेश (फ़क़ीर) ने बुलन्द किया और उनकी संगति के सुप्रभाव से ख़ुद वहाँ का राजा मुसलमान हो गया जो इतिहास में सदरुद्दीन के नाम से मशहूर है। फिर सन् सात हिजरी में सैयद अली हमदानी (रह०) सात सौ सैयदों के साथ यहाँ तशरीफ़ लाए और पूरे कश्मीर के इलाक़ों में इस पवित्र वर्ग ने ख़ुदा को पहचानने की इस रौशनी को फैलाया। आलमगीर के ज़माने में सैयद शाह फ़रीदुद्दीन (रह०) ने कुश्तवार के राजा को मुसलमान किया और उसके ज़रिए उस इलाक़े में इस्लाम का प्रचार हुआ। दक्षिण में इस्लाम का आरम्भ पीर महावीर खमदायत से हुआ जो आज से सात सौ वर्ष पहले बीजापुर तशरीफ़ लाए थे। एक और बुज़ुर्ग जो हज़रत शेख़ अब्दुल-क़ादिर जीलानी (रह०) की औलाद में से थे, कोंकण (Konkan) क्षेत्र के रहनुमा और रहबर थे। धरवाड़ (Dharwad) के लोग अपने इस्लाम को हज़रत शेख़ हाशिम गुजराती (रह०) की तरफ़ मंसूब करते हैं, जो हज़रत इबराहीम आदिल शाह (रह०) के पीरे-तरीक़त थे। नासिक में हज़रत मुहम्मद सादिक़ सरमस्त (रह०) और ख़्वाज़ा अख़वन्द मीर हुसैनी (रह०) की रूहानी बरकतों को अब तक स्वीकार किया जाता है। मद्रास भी अपनी हिदायत के लिए उस वक़्त के कुछ बुज़ुर्गों का एहसानमन्द है जिनमें सबसे ज़्यादा मशहूर सैयद निसार

शाह (रह॰) हैं जो त्रिचीरापल्ली (Tiruchirappalli) में दफ़न हैं। दूसरे बुज़ुर्ग सैयद इबराहीम शहीद (रह॰) हैं जिनका मज़ार (क़ब्र) इरवादी (Ervadi) में है और तीसरे बुज़ुर्ग शाह अल-हामिद (रह॰) हैं जिनका मज़ार नागोर में है। पेनुकोण्डा (Penukonda) की तरफ़ इस्लामी आबादी आमतौर पर अपने इस्लाम को हज़रत बाबा फ़ख़रुद्दीन (रह॰) की तरफ़ मंसूब करती है जिन्होंने वहाँ के राजा को मुसलमान किया था।

पुण्यात्मा सूफ़ियों (रह॰) की इन्हीं प्रचारक गतिविधियों का असर आज तक हम यह देखते हैं कि हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा समूह यद्यपि मुसलमान न हो सका मगर अब तक इस्लामी रहनुमाओं, पेशवाओं का चाहनेवाला है। चुनाँचे सन् 1891 ई॰ की जनगणना में उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के 23 लाख 23 हज़ार 643 हिन्दुओं ने अपने-आपको किसी ख़ास देवता का उपासक बताने के बजाए किसी न किसी मुसलमान पीर का पुजारी ज़ाहिर किया था। वे लोग हिन्दुओं की एक बड़ी आबादी पर इस्लाम का ग़ैर-मामूली असर छोड़ गए मगर अफ़सोस कि आज हम उस असर से भी फ़ायदा उठाने के क़ाबिल नहीं हैं।

हिन्दुस्तान से बाहर

हिन्दुस्तान से बाहर कुछ दूसरे देशों में भी इस पवित्र जमाअत (गरोह) की धर्म-प्रचारक गतिविधियों ने हैरत-अंगेज़ नतीजे पैदा किए हैं। विशेष रूप से मध्यकाल के इतिहास की किताबों में यह घटना जिसकी सच्चाई का इनकार नहीं किया जा सकता कि जब तातार के फ़ितने ने इस्लामी हुकूमत के गगन-चुम्बी महलों की ईंट से ईंट बजा दी तो पूरे मध्य एशिया में सिर्फ़ एक इस्लामी सूफ़ियों की रूहानी ताक़त थी जो उसके मुक़ाबले के लिए बाक़ी रह गई थी और आख़िरकार उसी ने इस्लाम के उस सबसे बड़े दुश्मन पर विजय प्राप्त की। लेकिन मुसलमानों की सबसे बड़ी बदक़िस्मती यह है कि यह ज़बरदस्त शक्ति भी जिसने पूरे संसार में इस्लाम की रौशनी फैलाई और तातार के भयानक फ़ितने तक को उसके लिए वशीभूत (मुसख़्ख़र) कर दिया, जो क़रीब था कि मध्य एशिया से उसको बिलकुल मिटा देता, आज बिलकुल

शिथिल होकर रह गई है और अगर हमारे सूफ़ी हज़रात हमें माफ़ करें तो हमें इस बात की सच्चाई के बयान करने में कुछ भी झिझक नहीं है कि अब वह रूहानी ताक़त इस्लाम की बरकतों और फ़ैज़याबियों से दुनिया को आबाद करने के लिए बहुत हद तक ख़ुद ही ग़ैर-इस्लामी ख़राबियों और फ़ितनों से प्रभावित होकर रह गई है।

अफ़्रीक़ा में

मौजूदा ज़माने में यह शक्ति सिर्फ़ अफ़्रीक़ा में जीवित है और अल्लाह के दीन के प्रचार-प्रसार के सिलसिले में उसकी महान कामयाबियाँ हमारे देश के क़ाबिले-एहतिराम सूफ़ियों के लिए नसीहत और प्रतिभा-शिक्षाप्रद पूँजी हैं। इन सूफ़ी जमाअतों में एक "जमाअत अमीरे-ग़न्निय्या" है जिसके संस्थापक मुहम्मद उसमान अल-अमीर ग़नी ने सन् 1835 ई. से 1853 ई. तक पूर्वीय सूडान के मुसलमानों की दीनी इस्लाह (धार्मिक सुधार) की और आसपास में बीसियों मुशरिक क़बीलों को मुसलमान कर लिया।

दूसरी जमाअत क़ादरिया है। पश्चिमी अफ़्रीक़ा में इस सिलसिले के लोग नवीं सदी हिजरी से मौजूद हैं। उन्नीसवीं सदी ईसवी की शुरुआत में उनके अन्दर भी एक नया जीवन पैदा हुआ और उन्होंने पश्चिमी सूडान से लेकर टिम्बकटू (Timbuktu) और सेनेगल (Senegal) तक अपनी जमाअतें क़ायम कर लीं। ख़ासतौर पर नांगाटिम्बू (Naga Timbu) और मुसारदो (Musardu) में उन्होंने बहुत बड़ी जमाअतें क़ायम कर लीं और निहायत तेज़ी के साथ मुशरिक क़बीलों में इस्लाम का प्रसार-प्रचार शुरू कर दिया। उनका उसूल यह है कि जब किसी आबादी में इस्लाम का प्रसार कर चुकते हैं तो वहाँ के बुद्धिमान और क़ाबिलीयत रखनेवाले लड़कों को अपने केन्द्रीय क्षेत्रों में तालीम के लिए भेज देते हैं या उनमें अधिक सलाहियत देखते हैं तो उन्हें पूर्ण धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए क़ैरवान (Kairouan), फ़ास (Fer), तराबुलुस (Tripoli) या अल-अज़हर (मिस्र) भेज देते हैं और फिर वापसी पर उन्हीं को अपनी बस्तियों में प्रचार और शिक्षा के लिए मुक़र्रर कर देते हैं। इसके अलावा उन्होंने अफ़्रीका के अन्दर बहुत ज़्यादा मदरसों की स्थापना

भी कर रखी है और उनमें सही उंसूलों पर जंगली क़बीलों के लड़कों की तरबियत करते हैं।

एक और सिलसिला "तैजानिया" के नाम से मशहूर है जो सबसे पहले अल-जज़ाइर में क़ायम किया गया था। उसके प्रचार करने के उसूल लगभग वही हैं जों क़ादरिया के सिलसिले में हैं। मगर फ़र्क़ यह है कि वह प्रचार के साथ जिहाद भी करता है और इसलिए ईसाई मिशनरियों को उसके खिलाफ़ यूरोपीय सम्राज्यवाद से मदद हासिल करने का अच्छा .खासा बहाना हाथ आ जाता है। इसका प्रभाव-क्षेत्र उत्तरी अफ्रीक़ा का पश्चिमी भाग है और उसका सबसे ज़्यादा सरगर्म प्रचारक अलहाज उमर था जो अपनी इबादत और परहेज़गारी के लिए अफ्रीक़ा से हिजाज़ तक शोहरत (प्रसिद्धि) रखता था। उसने सन् 1833 ई॰ में प्रचार-प्रसार का काम आरम्भ किया और ऊपरी नाइजीरिया और सेनेगल तक मुशरिक क़बीलों को मुसलमान बनाकर एक ज़बरदस्त सल्तनत क़ायम कर ली, जिसे आख़िर में फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने मिट्टी में मिला दिया।

इन तमाम जमाअतों में सबसे ज़्यादा ज़बरदस्त सन्नूसी जमाअत है। सन् 1833 ई॰ में अल-जज़ायर के एक मशहूर आलिम सैयदी मुहम्मद-बिन-अली अस्सन्नूसी ने सन्नौसिया परम्परा का आरम्भ किया, जिसका मक़सद मुसलमानों की इस्लाह (सुधार), फ़िरंगी साम्राज्य से प्रतिरक्षा और इस्लाम का प्रचार-प्रसार था। बाईस साल के अरसे में उन्होंने एक ऐसी ज़बरदस्त जमाअत तैयार कर ली जिसकी व्यवस्था शासन की व्यवस्था से ज़्यादा मुकम्मल थी। जिसका हर आदमी जमाअती उद्देश्यों की लगन में डूबा हुआ था और जिसके हर सदस्य को .खालिस इस्लामी तरबियत देकर सच्चा मुसलमान बना दिया गया था। इसमें क़ुरआन मजीद के एक-एक लफ़्ज़ पर अमल करना पहली शर्त है। औलिया की परस्तिश, मज़ारों की ज़ियारत, कॉफ़ी और तम्बाकू का इस्तेमाल, ईसाइयों और यहूदियों से सम्बन्ध सब वर्जित हैं। हर आदमी एक सच्चे मुजाहिद की तरह जीवन बसर करता है। मिस्र से लेकर मराकश तक और तराबुलुस (Tripoli) के तटों से लेकर अफ्रीक़ी रेगिस्तानों के अन्तिम छोरों (कोनों) तक उसकी .खानक़ाहें क़ायम हैं।

अफ़्रीक़ा के अलावा अरब, ईराक़ और मलाया द्वीप समूहों तक इसका असर फैला हुआ है। इसकी तबलीग़ी कोशिशों ने अफ़्रीक़ा के उन तमाम क़बीलों को सही मानों में मुसलमान बना दिया है जो सिर्फ़ नाम के लिए मुसलमान रह गए थे। गाला, बिटसिटी और बोरको के इलाक़ों (क्षत्रों) तक इस्लाम की एक नई रूह (आत्मा) फूँक दी है। क़ादरिया सिलसिले के लोगों की तरह इनके यहाँ भी सिर्फ़ उपदेश नहीं हैं बल्कि ये मुसलमान बनाने के बाद नव-मुस्लिमों को अमली तरबियत भी देते हैं ताकि वे ख़ुद अपने दूसरे ग़ैर-मुस्लिम भाइयों को इस्लाम की दावत दे सकें।

इन अफ़्रीक़ी जमाअतों ने जंगली क़बीलों में जो अजीब ज़िन्दगी पैदा कर दी है उसके बारे में एक यूरोपीय पर्यटक लिखता है—

"नाइजर की नदी के किनारे-किनारे जब मैं मध्य अफ़्रीक़ा की तरफ़ चल पड़ा तो पहले दो सौ मील तक मुझे अपने विचारों को बदलने की ज़रूरत नहीं हुई जो मैं अफ़्रीकी पशुता, बरबरियत और नरभक्षता के बारे में रखता था। मगर जब मैं मध्य सूडान के पास पहुँच गया तो मुझे क़बीलों के जीवन में ऐसे उन्नतिशील लक्षण नज़र आने लगे जिन्हें देखकर मेरी राए बदलने लगी। मैंने देखा कि वहाँ नरभक्षता का कोई वुजूद नहीं है। मूर्ति-पूजा समाप्त हो चुकी है, शराबख़ोरी वग़ैरा की आदतों का अन्त हो चुका है। तमाम क़बीलों के लोग कपड़े पहनते हैं और लिबास में स्वच्छता, पाकीज़गी और सामाजिक रहन-सहन में सभ्यता मौजूद है और मालूम होता है कि उनका नैतिक स्तर उनके अपने जैसे क़बीलों से बहुत ऊँचा है। हर चीज़ तरक़्क़ी करती नज़र आ रही है। हब्शी फ़ितरत किसी उच्चतर फ़ितरत से बदल रही है और यह सब कुछ इस्लाम की देन है। लोकोजा (Lokoja) से गुज़रने के बाद मैं इस्लामी प्रसार-प्रचार के मुख्य केन्द्र में पहुँचा और वहाँ मैंने एक उच्च-स्तर की सुव्यवस्थित हुकूमत को काम करते हुए पाया। हर तरफ़ आबादी में सभ्यता के चिह्न मौजूद थे, व्यापार और उद्योग हुनरमन्दी की गर्मबाज़ारी थी और मुझे महसूस होता था कि मैं एक सुसभ्य देश में हूँ।"

अध्याय-4

इस्लाम का प्रचार-प्रसार अफ़्रीक़ा में

हम बार-बार बता चुके हैं कि मुसलमानों में कभी बाक़ायदा मिशनरी सोसायटियों का वुजूद नहीं रहा है। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि उनके मज़हब ने दीन की ख़िदमत (धर्म-सेवा) को किसी विशेष समुदाय तक सीमित नहीं रखा बल्कि हर मुसलमान पर समान रूप से फ़र्ज़ किया है कि वह यथासम्भव अपनी सारी शक्तियाँ दीन की ख़िदमत में लगा दे। जिस तरह ईसाइयों में एक ख़ास गरोह के सिवा न कोई गरोह धार्मिक मामलों में हिस्सा लेता है और न धार्मिक लगाव रखता है, इसी तरह अगर मुसलमानों में भी कोई मज़हबी गरोह बना दिया जाता तो बहुत सम्भव था कि उनमें भी अपने मज़हब के प्रचार-प्रसार की अभिरुचि (शौक़) सिर्फ़ एक छोटी-सी जमाअत तक सीमित रहती और आम मुसलमान इससे वंचित रहते।

लेकिन इस जमहूरी मज़हब (लोकतांत्रिक धर्म) के लिए, जो श्रेष्ठता का पैमाना सिर्फ़ अच्छे कर्मों को ठहराता है, यह बहुत मुश्किल था कि वह बरकत और सौभाग्य में भी आम लोगों को सम्मिलित न करता। अतः दुनिया में सिर्फ़ इस्लाम ही एक ऐसा मज़हब (धर्म) है जिसके अनुयायियों में अपने मज़हब के प्रचार-प्रसार का ज़ौक़-शौक़ सबसे ज़्यादा पाया जाता है और जिसका हर व्यक्ति एक प्रचारक की हैसियत रखता है।

हम पिछले पृष्ठों में बता चुके हैं कि तबलीग़ का यह ज़ौक़-शौक़ हर जगह के मुसलमानों में आमतौर से पाया जाता था। अब ज़रूरत है कि इस मसले पर भी रौशनी डाली जाए कि आम लोगों के इस ज़ौक़-शौक़ ने किस तरह मुल्कों को फ़तह किया है और वे कौन लोग थे जिनके हाथों इस्लाम को इतना विश्वस्तरीय विस्तार प्राप्त हुआ है। हिन्दुस्तान,[1] ईरान, अरब और

1. उपमहाद्वीप—भारत, पाक और बंग्लादेश।

मिस्र वग़ैरा देशों को जाने दीजिए कि यहाँ मुसलमानों को हुकूमत भी हासिल हुई है। इसलिए विरोधी यह कह सकते हैं कि बहुत सम्भव है कि इन देशों में इस्लाम का प्रसार तलवार से हुआ हो। हमें अफ़्रीक़ा, चीन और मलाया द्वीप समूहों को लेना चाहिए, जहाँ तमाम विरोधी भी मानते हैं कि इस्लाम को कभी तलवार इस्तेमाल करने का मौक़ा नहीं मिला और इससे ज़्यादा तातारी और तुर्किस्तानी देशों को लेना चाहिए जहाँ इतिहास का स्पष्ट फ़तवा (धर्माज्ञा) यह है कि निःशस्त्र इस्लाम ने सशस्त्र कुफ़्र का मुक़ाबला करके उसे पराजित किया है। इन मिसालों से हम पाठकों को यह दिखाना चाहते हैं कि मज़हबी लगाव रखनेवाले मुसलमानों ने इस पवित्र दीन की ख़िदमत किस तरह की है और अगर हम भी इसी तरह धार्मिक भाव से हरकत में आ जाएँ तो किस तरह इस्लाम का प्रसार और उसकी सुरक्षा के उन मसलों को हल कर सकते हैं जिनके लिए कान्फ्रेंसों पर कान्फ्रेंसें आयोजित करनी पड़ रही हैं। इस सिलसिले में हम सबसे पहले अफ़्रीक़ा पर वार्ता करेंगे।

अफ़्रीक़ा में इस्लामी सूरज का उदय

पश्चिमी सूडान में इस्लाम का प्रसार सबसे पहले उन नव-मुस्लिम बरबरों ने किया जो व्यापार के सिलसिले में वहाँ आते-जाते थे। उन बरबरी क़बीलों में लमतूना (Lamtuna) और जदाला (Gudala) नामक दो क़बीलों ने यूसुफ़-बिन-ताशफ़ीन के ज़माने में लगभग तमाम पश्चिमी सूडान को इस्लाम की रौशनी से रौशन कर दिया था। पाँचवी सदी हिजरी में इन्हीं बरबरी व्यापारियों ने घाना (Ghana) की हब्शी रियासतों को मुसलमान कर लिया और इसके बाद सूडान की प्राचीनतम रियासत सोंघाई (Songhai) भी उनके हाथों मुसलमान हो गई। छठी सदी हिजरी में उनके प्रभाव दूर-दूर तक पहुँच गए और इसके बाद टम्बकटू का मशहूर व्यापारिक शहर इस्लाम-प्रसार का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। हब्शी लोग व्यापार के सिलसिले में यहाँ आते थे और बरबर व्यापारियों से इस्लाम की अमूल्य दौलत लेकर तमाम सूडान और नाइजीरिया में फैल जाते थे। उन लोगों में मज़हबी लगाव इतना अधिक तरक़्क़ी कर गया था कि इब्ने-बतूता जब वहाँ पहुँचा तो इसके बारे में लिखता है—

"ये लोग क़ुरआन मजीद के आशिक़ (प्रेमी) हैं और नमाज़ की पाबन्दी का यह आलम है कि जुमा के दिन अगर सवेरे से जाकर मस्जिद में न बैठ जाओ तो जगह मिलनी दूभर हो जाती है।"

इन नव-मुस्लिम क़ौमों में इस्लाम की सबसे ज़्यादा सरगर्म प्रचारक माँडनिगो क़ौम थी जो सारे अफ़्रीक़ा में अपनी आदतों और चाल-चलन के एतिबार से निहायत मुमताज़ क़ौम है। इसका सबसे बड़ा कारनामा यह है कि हाऊसा क़ौम ने इसी की कोशिशों से इस्लाम क़बूल किया। हाऊसा क़ौम वह है जो मध्य-उत्तरी अफ़्रीक़ा में बहुत ही ज़हीन (बुद्धिमान), तत्पर और व्यापारिक क़ौम मानी जाती है। लगभग पूरे सूडान और नाइजीरिया की तिजारत पर क़ाबिज़ है और घाना से लेकर क़ाहिरा तक उसके तिजारती क़ाफ़िले आते-जाते हैं। इस्लाम-प्रसार के लिए इस तिजारती क़ौम की ज़बरदस्त कोशिशों का बयान आगे आता है।

पूर्वी सूडान में इस्लाम का प्रचार मिस्र के व्यापारियों ने किया और ख़ास तवज्जोह से किया। जब मिस्र की फ़ातिमी ख़िलाफ़त का अन्त हुआ तो बहुत से अरब भागकर सूडान के इलाक़े में पहुँच गए और उन्होंने उस इलाक़े में दूर-दूर तक इस्लाम फैला दिया। इस इलाक़े में त्युनिस और तन्जा के अरब ताजिरों ने भी इस मुबारक फ़र्ज़ को अंजाम दिया है और ख़ासतौर पर दक्षिण-पश्चिमी सूडान इस बड़ी ख़ुश क़िस्मती के लिए उन्हीं की कोशिशों का आभारी है। बाद में अहमद नामक एक अरब ने दारफ़ोर (Darfur) में इस्लामी हुकूमत भी क़ायम कर दी जिसे कई सालों बाद मुहम्मद अली पाशा ने अपनी हुकूमत में शामिल कर लिया।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में ऊपरी अफ़्रीक़ा के मुसलमानों में एक नई तबलीग़ी (प्रचारक) रूह पैदा हुई जिसका आरम्भ उसमान दान फ़ूदियो से होता है। इस व्यक्ति ने अब्दुल-वहाब नजदी (रह०) की शिक्षाओं से प्रभावित होकर भलाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने का जो फ़र्ज़ मुसलमान भुला बैठे थे उसमें दोबारा जान डाल दी। ख़ासतौर से फ़ुल्बी

(Fulbe) क़ौम में उसने कुछ ऐसा इस्लामी जोश भर दिया कि वह इस्लाम की ख़िदमत के लिए जी-जान से खड़ी हो गई और गोबिर (Gobir) की पुरानी रियासत में मूर्ति-पूजा का अन्त करके तमाम हाउसा लैंड (Hausaland) को कुफ़्र और शिर्क की बुराइयों से पाक कर दिया। सन् 1816 ई॰ में जब उसमान दान फ़ूदियो की मौत हुई तो वह हाउसा के राज्य का सर्वाधिकारी शासक था और उसके विशाल राज्य में कहीं बुतपरस्ती (मूर्ति- पूजा) का नामोनिशान तक बाक़ी न था। सन् 1900 ई॰ में अंग्रेज़ों ने उस इस्लामी हुकूमत का अन्त कर दिया मगर हाउसा और फ़ुल्बी क़ौमों के तबलीग़ी (प्रचारक) ज़ौक़-शौक़ पर उसकी महकूमी (पराधीनता) का कोई असर नहीं पड़ा। अतः इसी बीसवीं शताब्दी में उन्होंने यूरोबा (Yoruba) के बुतपरस्त इलाक़े को इस्लाम से परिचित कराया है और नाइजर (Niger) नदी के दक्षिणी छोर तक दीने-इस्लाम का प्रसार किया है। अजीबू के इलाक़े में पहली बार उन्होंने सन् 1894 ई॰ में अपना काम शुरू किया और कुछ ही सालों में इतनी अधिक तरक़्क़ी की कि सन् 1908 ई॰ में वहाँ के एक शहर में बीस और दूसरे में बारह मस्जिदें बन गईं। इसी तरह नाइजर नदी के दक्षिण में वे सन् 1898 ई॰ के बाद इस्लाम का पैग़ाम लेकर गए और सन् 1910 ई॰ में यह स्थिति हो गई कि उस इलाक़े में मुश्किल ही से कोई क़बीला ऐसा रह गया होगा जिसने इस सत्य की आवाज़ को क़बूल न किया हो।

अफ़्रीक़ा का पश्चिमी किनारा मुसलमानों का एक और तबलीग़ी क्षेत्र (मैदान) है। गिनि (Guinea), सेराल्यूना (Sierra Leone), लाइबेरिया (Liberia) और मेन्डी[1] (Mendi) वग़ैरा तटीय इलाक़ों में आज से कोई सवा-सौ साल पहले मुसलमान ताजिरों और दूसरे कारोबारियों ने इस्लाम के प्रचार का आरम्भ किया और थोड़ी ही मुद्दत में वहाँ के जंगलीपन को संस्कृति और सभ्यता में बदल दिया और सन् 1802 ई॰ में सेराल्यूना की एक अंग्रेज़ कम्पनी ने इस्लामी युनिवर्सिटी में दरखास्त पेश करते हुए लिखा था—

1. मेन्डी (Mendi) सेराल्यूना से सौ मील दक्षिण में स्थित एक इलाक़ा।

"यहाँ से लगभग चालीस मील के फ़ासले पर आज से सत्तर वर्ष पहले कुछ मुसलमान ताजिर आकर बस गए थे। आम मुसलमानों की तरह यहाँ भी उन्होंने मदरसे क़ायम करके इस्लामी तालीम (शिक्षा) देनी शुरू कर दी और इस बात का अहद (प्रतिज्ञा) कर लिया कि जो आदमी इस्लाम क़बूल कर लेगा उसे ग़ुलाम बनाकर नहीं बेचा जाएगा। बहुत ही कम समय में यहाँ तहज़ीब और सभ्यता के चिह्न नज़र आने लगे। आबादी बढ़ गई, ख़ुशहाली ने तरक़्क़ी की और धीरे-धीरे इस इलाक़े में इस्लाम का प्रभाव सब पर छा गया। लोग गरोह के गरोह मुसलमानों के मज़हब (इस्लाम) में दाख़िल हो रहे हैं और ऐसा मालूम होता है कि बहुत ही जल्द सारा इलाक़ा मुसलमान हो जाएगा।"

सेराल्यूना ही के लोगों में जो इस्लाम का प्रचार हुआ उसके बारे में डॉक्टर वीमर कहता है—

"उन लोगों के यहाँ कोई ख़ास जमाअत (संगठन) दीनी प्रचार के लिए निश्चित नहीं, बल्कि उनका हर व्यक्ति प्रचारक है। जहाँ कहीं पाँच-छः मुसलमान जमा हो जाते हैं वहीं एक मस्जिद बन जाती है। वह छोटी-सी इमारत ही उस बस्ती में इस्लाम-प्रसार का केन्द्र होती है। उनके उसूल भी निहायत सादा हैं। हर आदमी जो कलिमा पढ़कर नमाज़ पढ़ने और शराब से परहेज़ करने का इक़रार कर लेता है वह उनकी आलमगीर बिरादरी का एक सदस्य बन जाता है।"

गिनि में उसके सरगर्म प्रचारक हाउसा क़ौम के व्यापारी हैं। उनका दिलकश रहन-सहन और नुमायाँ शान जंगली क़बीलों को उनकी ओर खींच लाती है और वे बहुत ही कामयाबी के साथ उन्हें अपने मज़हब में दाख़िल कर लेते हैं। दाहोमी (Dahomey)[1] और अशानती (Ashanti) में इन क़ौमों ने अभी कुछ ही सालों से काम शुरू किया है—इसलिए सारे पश्चिमी अफ़्रीक़ा

1. यह नाम पहले था अब बेनिन (Benin) कहा जाता है।

में यही दो इलाक़े ऐसे हैं जहाँ अभी तक थोड़ा बहुत कुफ़्र व बुतपरस्ती (मूर्ति-पूजा) का नामोनिशान बाक़ी है। लागोस (Lagos) में मुसलमानों का बड़ा ज़ोर है। इनकी आबादी लगभग पन्द्रह हज़ार तक पहुँच चुकी है, जिनमें फुल्बी, हाउसा और मांडंगो तीनों क़ौमों के लोग मौजूद हैं। अपने कारोबार के सिलसिले में इन लोगों को दूर-दूर तक जाना पड़ता है। इसलिए इनकी बदौलत नाइजीरिया के सारे तटीय क्षेत्र और गोल्ड कोस्ट (The Gold Coast) इस्लामी प्रकाश से प्रकाशमान हो रहे हैं। सेनेगल के दहाने से लागोस तक दो हज़ार मील के तट पर लगभग एक बस्ती भी ऐसी नहीं जहाँ कम से कम एक मस्जिद और एक मौलवी (आलिम) मौजूद न हो। हर मुसलमान चाहे वह व्यापारी हो या इंग्लैंड, फ्रान्स या बेलजियम का मुलाज़िम (नौकर) उसका सबसे पहला फ़र्ज़ यह है कि जिस ग़ैर-मुस्लिम बुतपरस्त से मिलता है उस तक क़ुरआन की शिक्षा (तालीम) पहुँचा देता है। इस ज़बरदस्त तबलीग़ी ज़ौक-शौक़ ने ईसाई मिशनरियों की तमाम उम्मीदों पर पानी फेर दिया है।

पूर्वी अफ़्रीक़ा को भी अरबी व्यापारियों ही के ज़रिए इस्लाम की बड़ी नेमत का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बीसवीं सदी ईसवी तक उन लोगों ने ज़ंज के तमाम तटीय लोगों को इस्लाम से परिचित करा दिया था और जगह-जगह इस्लामी बस्तियाँ बस गई थीं। मगर अस्ल प्रचार-प्रसार का काम उस वक़्त शुरू हुआ जब जर्मनी, ब्रिटेन और इटली वग़ैरा ने उन देशों में नई आबादियाँ बसाईं और देश के अन्दर तक पहुँचने के लिए साधन पूरे कर लिए। उस वक़्त हुकूमत की व्यवस्था क़ायम करने के लिए उन हुकूमतों को मुसलमानों के सिवा और कोई जमाअत या गरोह नहीं मिल सकता था। अतः फ़ौज, पुलिस, अदालत, शिक्षा, मालगुज़ारी यहाँ तक कि हर विभाग में मुसलमान भर्ती किए गए और उन्होंने अफ़्रीका के अन्दर पहुँचकर सबसे ज़्यादा गर्मजोशी के साथ जो ख़िदमत अंजाम दी वह इस्लाम का प्रचार-प्रसार था। बीसवीं सदी के शुरू में उन्होंने बोन्दी (Bondei) और वादीगो क़बीलों को लगभग बिल्कुल मुसलमान कर लिया। सन् 1905 ई॰ के बाद पश्चिम में टांगानीका (Tanganyika) तक और उत्तर में ओसम्बारा (Usambara) तक तथा दक्षिण में न्यासा तक क़ुरआनी शिक्षाएँ लेकर फैल गए। सन् 1891 ई॰

में ओसम्बारा में एक भी मुसलमान नहीं था, बल्कि उनसे नफ़रत की जाती थी। मगर जब बाक़ायदा हुकूमत क़ायम हुई और मुसलमान अफ़सर वहाँ पहुँचे तो बहुत ही कम समय में लगभग सारे के सारे वे लोग मुसलमान हो गए जो सरकारी अफ़सरों से कोई वास्ता रखते थे और ज़्यादातर स्कूलों में इस्लाम फैल गया, जहाँ मुसलमान शिक्षक नियुक्त थे। इसी तरह न्यासा लैण्ड (Nyasaland) में भी दस साल के अन्दर-अन्दर इस्लाम ने हैरत-अंगेज़ तरक़्क़ी की है और ईसाई प्रचारक मानने पर विवश हैं कि उन देशों में मुसलमान बन जाना इनसान बन जाने के समान है।

कैप कालोनी (Cape Colony) में इस्लाम का प्रचार-प्रसार मलाया द्वीप-समूह के व्यापारियों ने किया है। ये लोग हॉलैन्ड की हुकूमत के प्रभाव में होने के कारण एक लम्बे समय से यहाँ बसे हुए हैं और निहायत ख़ामोशी के साथ अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं। सन् 1809 ई० में कॉलबरुक ने लिखा था—

> "हमारे प्रचारकों की अनथक कोशिशों के बावुजूद मुसलमान प्रचारक बड़ी बहुतायत के साथ काले रंग के ग़ुलामों और आज़ाद लोगों को मुसलमान करने में कामयाब हो रहे हैं। हमारे मिशनरी काफ़ी वक़्त और बहुत ज़्यादा रुपया ख़र्च करके भी मुश्किल से कुछ ही आदमियों को ईसाई बना पाते हैं। मगर मुसलमान बग़ैर किसी कठिनाई के एक बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठा करते जा रहे हैं।"

पिछले पचास-साठ साल से दूसरे देशों के मुसलमान भी यहाँ पहुँच गए हैं और उन्होंने प्रचार-प्रसार के काम में एक नई रूह फूँक दी है। इस वक़्त ख़ुसूसियत के साथ क्लेरामाउन्ट (Claremount) में प्रचार का सबसे ज़्यादा ज़ोर है और यतीम व बेसहारा बच्चे अधिकता के साथ मुसलमान हो रहे हैं।

❖❖

अध्याय-5

चीन में इस्लाम का प्रचार-प्रसार

अफ़्रीक़ा के बाद मुसलमानों की प्रचारक जीतों का दूसरा मैदान चीन है। यहाँ भी केवल व्यापारियों, सिपाहियों और आम कारोबारी मुसलमानों ने सिर्फ़ अपने स्वाभाविक ज़ौक़-शौक़ और इस्लामी जोश के आधार पर इस्लाम का प्रचार किया। बावुजूद इसके कि उन्हें दौलत व हुकूमत का कभी समर्थन न मिल सका बल्कि अकसर हालात में दुश्मनों की तलवारों का मुक़ाबला पीड़ित के रूप में करना पड़ा, लेकिन फिर भी उन्हें अपने दीन के प्रचार में इतनी ज़बरदस्त कामयाबी हासिल हुई कि इस वक़्त चीन और मलाया द्वीप-समूह में उनकी कुल आबादी किसी तरह भी आठ-नौ करोड़ से कम नहीं है।

चीन में इस्लाम का आरम्भ बनी-उमय्या की हुकूमत के ज़ामने से होता है। हालाँकि .ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन ही के मुबारक ज़माने में वे अरब व्यापारी, जिनकी समुद्री दौड़-धूपों ने अरब सागर से लेकर प्रशान्त महासागर तक तमाम समुद्रों को छान मारा था, चीन के किनारों पर इस्लाम को लेकर फैल गए थे, लेकिन चीनी क़ौम से इस्लाम का परिचय उस वक़्त हुआ जब बनू-उमय्या की हुकूमत के ज़माने में चीनियों से राजनयिक सम्बन्ध भी क़ायम हो गए। बाद में जब बादशाह स्वान सूंग (Hsuan Tsung) की हुकूमत पर एक शख़्स ने ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा करके उसे तख़्त से महरूम कर दिया तो उसके बेटे ने .ख़लीफ़ा मन्सूर अब्बासी से मदद माँगी और उसने चार हज़ार सिपाही उसकी मदद के लिए भेज दिए, जिनकी युद्ध-कुशलता की बदौलत उसने दोबारा बादशाही का ताज-व-तख़्त हासिल किया। ये सिपाही इस्लाम के सच्चे प्रचारक थे। इन्होंने अपने वतन वापस आने के बजाए चीन ही को अपना वतन बना लिया। यहीं शादी-ब्याह किए और आम चीनी आबादी में इस्लाम के प्रचार का ऐसा सिलसिला शुरू किया कि कुछ ही सदियों के अन्दर केन्टन (Canton) का सारा इलाक़ा इस्लाम की रौशनी से भर गया।

इस्लाम का प्रसार मंज़िल-ब-मंज़िल

इस घटना के छः सौ साल बाद फिर एक बार चीन में बाहर से इस्लामी लोग दाख़िल हुए और वे सारे मुल्क में फैल गए। ये अरब, ईरानी और तुर्की मुहाजिर थे, जो सातवीं सदी हिजरी में मंगोली सैलाब से बहकर यहाँ चले आए थे। इन लोगों की वजह से सौ-डेढ़ सौ बरस के अन्दर-अन्दर चीन के आसपास ज़्यादातर हिस्सों में इस्लाम का प्रसार हो गया और विशेष रूप से उत्तरी और पश्चिमी चीन में पूरे के पूरे इलाक़े मुसलमान हो गए। तेरहवीं सदी ईसवी में मार्कोपोलो का बयान है कि "युन्नान (Yunnan) का सूबा (प्रान्त) बड़ी हद तक मुसलमान हो चुका है।" चौदहवीं सदी का एक और इतिहासकार लिखता है कि "तालीफ़ू (Talifu) की पूरी आबादी मुसलमान है।" दक्षिणी चीन के बारे में इब्ने-बतूता लिखता है कि "तमाम शहर में पूरे के पूरे मुहल्ले मुसलमानों के मौजूद हैं, जो अपनी पाकीज़गी और तहज़ीब के एतिबार से बहुत बढ़े हुए हैं। मुसलमान चीनी औरतों से शादियाँ करते और आम चीनियों से निहायत गहरे सम्बन्ध रखते हैं और इसकी बदौलत इस्लाम बहुत तेज़ी से फैल रहा है।" पन्द्रहवीं सदी में एक मुसलमान व्यापारी अली अकबर लिखता है कि पेकिंग (Beijing) में लगभग तीस हज़ार मुसलमान ख़ानदान आबाद हैं। सत्तरहवीं सदी के शुरुआती दौर में चीनी यहूदियों का एक बहुत बड़ा गरोह मुसलमान हो गया। अट्ठारहवीं सदी में केनलिंग ने ज़ंगारिया की बग़ावत को दबा करके दस हज़ार ख़ानदानों को वहाँ ले जाकर आबाद किया जो आसपास की इस्लामी आबादी से प्रभावित होकर सबके सब मुसलमान हो गए। "श्यान तुंग" (Chantong) में एक क़हत (सूखा) के मौक़े पर मुसलमानों ने दस हज़ार चीनी बच्चों को पनाह दी और उन सबको मुसलमान कर लिया। एक और क़हत के मौक़े पर क्वांनतुंग (Kwang Tung)[1] में मुसलमानों को लगभग दस हज़ार चीनी बच्चे मिल गए जिन्हें इस्लामी तरबियत देकर पाला-पोसा गया। इस तरह के ग़ैर-मामूली मौक़ों के अलावा आम हालतों में भी मुसलमान इस अधिकता से इस्लाम का प्रचार

1. Canton

करते हैं कि एक चीनी मुसलमान सैयद सुलैमान के कथनानुसार हर साल इस्लाम क़बूल करनेवालों की तादाद का अन्दाज़ा लगाना बहुत मुश्किल है।

मौजूदा ज़माने में[1] भी चीनी मुसलमानों के अन्दर इस्लाम के प्रचार-प्रसार की एक ख़ास अभिरुचि (ज़ौक़-शौक़) मौजूद है। व्यापारियों और कारीगरों के अलावा हुकूमत के मुसलमान मुलाज़िम भी आमतौर पर उन क्षेत्रों में सच्चे दीन का प्रचार करते हैं जिनसे उन्हें मेल-जोल का अवसर मिलता है। और चीनी फ़ौज के मुसलमान अफ़सर और सिपाही भी इस फ़र्ज़ से ग़ाफ़िल नहीं हैं। कुछ अरसे से चीनी मुसलमानों ने अपनी पोज़ीशन को महसूस करके इस्लाम-प्रसार की अहमियत (महत्व) को ज़्यादा अच्छी तरह से समझ लिया है। अतएव पहले काँसू (Kansu)[2] में एक तबलीग़ी मदरसा क़ायम किया गया था और अब लगभग दस प्रान्तों में ऐसे ही मदरसे क़ायम हो गए हैं। अगर चीन में बाहर से आए हुए मुसलमानों की गणना की जाए तो शायद उनकी तादाद एक लाख से ज़्यादा हो, मगर सिर्फ़ यह तबलीग़ का काम ही है जिसने उन्हें पाँच करोड़ की संख्या तक पहुँचा दिया है और जिसकी बदौलत एक रूसी समीक्षक यह देखकर काँप उठा है कि अगर इस्लाम के प्रसार की रफ़्तार का यही हाल रहा तो कुछ अजीब नहीं कि एक वक़्त में मुसलमान चीनी क्षेत्रों की सियासत (राजनीति) का नक़्शा बदल देंगे।[3]

---

1. मुराद है सन् 1925 के ज़माने में।
2. इसका नाम अब गाँसू (Gansu) है।
3. साम्राज्यवादी सैलाब के बाद चीन में मुसलमानों पर जो मुसीबत गुज़री है उसका साफ़ अन्दाज़ा उस ज़माने के और मौजूदा ज़माने के हालात की तुलना करने से आसानी के साथ लगाया जा सकता है। साम्रज्यवादी क्रान्ति के वक़्त वहाँ मुसलमानों की तादाद पाँच करोड़ से अधिक थी, लेकिन सन् 1961 ई. की सरकारी जनगणना के मुताबिक़ यह तादाद कम होकर सिर्फ़ एक करोड़ रह गई। इस बात से अक़्लवालों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

अध्याय-6

इस्लाम का प्रचार-प्रसार मलाया द्वीप-समूह में

मलाया द्वीप-समूह[1] में इस्लामी-प्रचारक वे अरबी और भारतीय व्यापारी थे जो समुद्री साम्राज्यवाद के मैदान में पुर्तगाल के क़दम रखने से पहले, पूरे के पूरे चीन और पूर्वी भारतीय द्वीप-समूह की तिजारत पर क़ाबिज़ थे। वे स्पेनियों और पुर्तगालियों की तरह विजेता बनकर नहीं आए थे और न तलवार की मदद से अपने मज़हब (धर्म) का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। उनके पास ऐसी भी कोई शक्ति नहीं थी जिससे वे कोई बहुत बड़ी ताक़त बनकर रहते। वे सिर्फ़ एक ईमान की ताक़त रखते थे। एक सच्चाई और यथार्थ की दौलत लेकर आए थे। इन्हीं हथियारों से उन्होंने पूरे मलाया द्वीप-समूह को जीता। इन्हीं के बल पर उन्होंने हुकूमत को अपने तहत ले लिया और इन्हीं की शक्ति से उन्हें यह तरक़्क़ी हासिल हुई कि छः सौ वर्ष के अन्दर तमाम द्वीप-समूहों की पाँच करोड़ आबादी में से लगभग चार करोड़ मुसलमान हो गई। प्राचीन मूर्ति-पूजा के अन्धविश्वासों ने उन्हें क़दम-क़दम पर रोका। हस्पानिया (Spain) और पुर्तगाल का साम्राज्यवादी लालच बार-बार उनपर तलवार सूँत कर खड़ा होता रहा और हालैण्ड[2] की मसीही

1. मुराद हैं पूर्वी भारतीय द्वीप-समूह, जो अब इन्डोनेशिया और मलेशिया कहलाते हैं। इन्डोनेशिया की फ़ेडरेशन में जावा, सुमात्रा, बोर्नियो (काली मंटन सुलावेसी), पश्चिमी न्यूगिनी (पश्चिमी एरयान) और हज़ारों छोटे-छोटे द्वीप-समूह शामिल हैं। और फ़ेडरेशन ऑफ़ मलेशिया, मलाया की ग्यारह रियासतों और ब्रिटेन का उत्तरी बोर्नियो (सबाह) और सावक पर मुश्तमिल है।
2. मलेशिया एक फ़रवरी सन् 1948 ई॰ को ब्रिटेन के क़ब्ज़े से आज़ाद हुआ और इण्डोनेशिया को हालैण्ड की लम्बी ग़ुलामी से 17 अगस्त सन् 1950 ई॰ को मुक्ति प्राप्त हुई।

(ईसाई) ताक़त ने उनका साहस तोड़ने में कोई कसर न उठा रखी थी। मगर कोई चीज़ उनके धार्मिक सेवा-भाव पर प्रभावी न हो सकी और उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता, तत्परता, जमाव और दौलत को अपनी शानो-शौकत बढ़ाने के बजाए, अपने मज़हब की शक्ति को बढ़ाने में लगा दिया। उनकी कोशिशों से पिछली छः सदियों के अन्दर मलाया द्वीप-समूहों में जिस तरह इस्लाम का प्रचार-प्रसार हुआ है, उसकी दास्तान (कहानी) अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

सुमात्रा (Sumatra)

सुमात्रा में इस्लाम का आरम्भ इतजा से हुआ, जहाँ एक बुज़ुर्ग अब्दुल्लाह आरिफ़ ने सबसे पहले हक़ (सत्य) की आवाज़ बुलन्द की और इसके बाद उनके मुरीद (शिष्य) बुरहानुद्दीन ने परयामान (Pariaman) तक तमाम पश्चिमी तटों को इस्लाम से परिचित करा दिया। सन् 1205 ई॰ में पूरी इतजा हुकूमत ने इस्लाम क़बूल कर लिया और ख़ुद राजा भी मुसलमान हो गया जिसको "जहाँशाह" की उपाधि दी गई। यहाँ से समुद्री किनारों की तिजारती नावों पर इस्लाम उत्तरी सुमात्रा में पहुँचा। परलॉक (Perlak) और लिस्पोरी में मुसलमानों की तिजारती नव-आबादियाँ बस गईं। चौदहवीं सदी ईसवी में मक्का के कुछ आलिम (इस्लामी विद्वान) शेख़ इसमाईल की सरदारी में सुमात्रा पहुँचे और उन्होंने लम्बरी से आरो (Aru) तक तमाम तटीय इलाक़ों में इस्लाम की रौशनी फैला दी। आख़िर सुमद्रा (Sumadra) का राजा भी मुसलमान हो गया। जिसको "अल-मलिकुस्सालिह" की उपाधि दी गई। उसकी कोशिशों से परलॉक की रियासत (राज्य) भी मुसलमान हो गई। इब्ने-बतूता अपने पर्यटन के दौरान जब यहाँ पहुँचा तो "अल-मलिकुस्सालिह" का बेटा "अल-मलिकुज़्ज़ाहिर" शासक था और सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ से उसके राजनयिक सम्बन्ध थे।

पालम बाँग (Palem Bang)

पालम बाँग में हिन्दू-धर्म का प्रभाव सबसे अधिक शक्तिशाली था। पन्द्रहवीं सदी के मध्य में राडन रहमत ने जो जावा का सबसे बड़ा इस्लामी

प्रचारक था, यहाँ इस्लाम का प्रचार किया और उसके बाद भी इस्लाम का प्रभाव फैलता रहा। मगर इस इलाक़े को सही मानों में इस्लाम की नेमत उस समय प्राप्त हुई, जब यहाँ हॉलैण्ड की हुकूमत क़ायम होने के बाद मुसलमानों ने ईसाई मिशनरियों के मुक़ाबले में अनथक कोशिशें शुरू की हैं। अतः बीसवीं सदी के आरम्भ से यहाँ की मुशरिक आबादी अधिक संख्या में इस्लाम क़बूल कर रही हैं।

दक्षिणी सुमात्रा

दक्षिणी सुमात्रा में इस्लाम का प्रचार सबसे आख़िर में हुआ। यहाँ इस्लाम का पहला प्रचारक एक जावी सरदार मिंककमाला बूमी था जिसने बंटाम में इस्लाम क़बूल किया। मक्का जाकर इस्लामी शिक्षाएँ हासिल कीं और लम्पाँग (Lanpang) में मूर्ति-पूजक क़बीलों को बड़ी संख्या में मुसलमान किया। अब पूरे सुमात्रा द्वीप-समूहों में केवल एक बटक (Batak) ऐसी जगह रह गई है जहाँ प्राचीन मूर्ति-पूजा का असर है। इस इलाक़े के लोग उस ज़माने में तो इस्लाम के दायरे में आने को तैयार नहीं हुए जबकि वह चारों ओर से शक्तिशाली इस्लामी रियासतों के बीच घिरा हुआ था, मगर अब हॉलैण्ड की कठोर मुस्लिम-दमनवाली हुकूमत क़ायम होने के बाद वह इस्लाम की फ़रमाँबरदारी (आज्ञापालन) क़बूल कर रहा है। हालैण्ड ने तलवार की ताक़त से इस्लाम के प्रसार को रोकने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया मगर इससे मुसलमानों का तबलीग़ी जोश और ज़्यादा तेज़ हो गया और उन्होंने ईसाई प्रचारकों को स्पष्टतः पराजित किया। चुनाँचे ख़ुद एक मिशनरी का बयान है कि एक मौक़े पर पूरे दो गाँव जो बपतिस्मा (ईसाई होने के लिए एक रस्म) ले चुके थे, अचानक मुसलमान हो गए। इसी तरह एक दूसरी जगह सिर्फ़ एक मस्जिद के इमाम की कोशिश से सीप्रोक का पूरा ज़िला मुसलमान हो गया। एक और इस्लामी प्रचारक के बारे में ईसाई मिशनरियों का बयान है कि उसने दस साल में बुतपरस्तों (मूर्ति-पूजकों) के एक क़बीले को ईसाइयत के असर से निकाल लिया। सबसे ज़्यादा हैरत की बात यह है कि ख़ुद हालैण्ड की हुकूमत के सरकारी मुलाज़िम (नौकर) भी इस्लाम के

प्रचार-प्रसार का काम करते हैं और हुकूमत इस काम की मुखालिफ़ (विरोधी) होने के बावुजूद उन्हें रोकने में सफल नहीं हुई।

सुमात्रा द्वीप-समूह से इस्लाम का असर मलाया द्वीप में पहुँचा। बारहवीं सदी ईसवी में सुमात्रा के बहुत से मुसलमान व्यापार के उद्देश्य से सिंगापुर में जाकर बस गए और एक सदी बाद उन्होंने मलक्का (Malacca) की बंदरगाह में अपनी नई आबादी क़ायम की। उनकी कोशिशों से तटीय क्षेत्रों की ज़्यादातर तिजारती आबादी मुसलमान हो गई और इनके ज़रिए मलाया के भीतरी क्षेत्रों में इस्लाम का प्रसार हुआ। चौदहवीं सदी ईसवी में यहाँ का राजा भी एक अरब ताजिर सैयदी अब्दुल-अज़ीज़ के हाथ पर मुसलमान हो गया और उसका नाम सुल्तान मुहम्मद शाह रखा गया। सोलहवीं सदी के शुरू में मलाया का दक्षिणी राज्य क्वैडा भी इस्लाम के प्रभाव में आ गया और सन् 1501 ई॰ में वहाँ के राजा पैराउंग महावंग ने एक मुसलमान आलिम शेख़ अब्दुल्लाह के हाथ पर इस्लाम क़बूल किया, जिसका नाम सुल्तान मुज़लफ़ रखा गया। इस राजा ने अपना सारा जीवन इस्लाम के प्रसार में लगा दिया और मरने से पहले क्वैडा राज्य के एक बड़े हिस्से को मूर्ति-पूजा से आज़ाद कर दिया।

मलाया से इस्लाम का असर स्याम (Siam) पहुँचा और सिंगापुर के मुसलमान व्यापारियों ने उसे हिन्द-चीनी[1] तक पहुँचा दिया। इस वक़्त उन दोनों देशों में इस्लाम का जितना असर पाया जाता है वह सब उन्हीं व्यापारियों की कोशिशों का फल है।

जावा

मलाया द्वीप-समूहों में हिन्दुत्व और मूर्ति-पूजा का सबसे ज़्यादा असर जावा द्वीप-समूह में था। मुसलमानों की उच्च शिक्षाओं के बावुजूद अंधविश्वास के अक़ीदों (आस्थाओं) का सदियों तक उन लोगों की तबियतों पर असर छाया रहा और मनु के धर्मशास्त्र के रिवाजों का तो सन् 1768 ई॰ तक पता चलता है। लेकिन उन तमाम गहरे और दृढ़ विश्वासों को इस्लाम

1. इण्डो-चीन

के ख़ामोश प्रचारकों ने कुछ शताब्दियों के अन्दर बिल्कुल दूर कर दिया और इस वक़्त हम देखते हैं कि सारे जावा द्वीप-समूह की आबादी सिर्फ़ कुछ लोगों को छोड़कर मुसलमान हो चुकी है और जावी मुसलमानों का दीनी लगाव पूर्वी भारत के द्वीपों में सबसे ज़्यादा बढ़ा हुआ है।[1]

इस महान काम का प्रारम्भ एक जावी व्यापारी हाजी पुरवा ने किया जो पाजाजारन के राजा का बड़ा बेटा था। उसने राज-पाट अपने छोटे भाई के लिए छोड़ दिया और ख़ुद व्यापार का माल लेकर भारत पहुँचा। यहाँ आकर दुनिया की दौलत के बजाए आख़िरत की दौलत उसे नसीब हो गई और उसने सबको छोड़कर अपनी ज़िन्दगी का मक़सद सिर्फ़ इस्लाम की नेमत से अपने वतन के लोगों को सौभाग्यवान बनाना निश्चित कर लिया। अतएव एक अरब आलिम को लेकर जावा पहुँचा और तमाम उम्र इस्लाम की खिदमत करता रहा। इसके बाद अरबी और भारतीय व्यापारियों और पर्यटकों का ध्यान इस द्वीप की तरफ़ आकर्षित हुआ और उन्होंने अधिकता से यहाँ आकर तटीय क्षेत्रों पर इस्लाम का प्रचार-प्रसार शुरू कर दिया। इस प्रकार के पर्यटकों की बड़ी जमाअत (समूह) चौदहवीं सदी में मौलाना सैयद इबराहीम की सरदारी में ग्रेसिक (Gresik) में पहुँची और उसको जावा के इतिहास में सबसे पहली बार कामयाबी (सफलता) हासिल हुई कि 'चिरमन' के राजा ने इस्लाम क़बूल कर लिया और यहीं से आसपास की रियासतों (राज्यों) में इस्लाम फैलना शुरू हो गया।

"राडन रहमत" का रहमत बनकर ज़ाहिर होना

पन्द्रहवीं सदी में जावा द्वीप-समूह का सबसे बड़ा इस्लामी प्रचारक राडन रहमत पैदा हुआ। जिसने इस्लाम को ग़ुर्बत के बोरिए से उठाकर बादशाही और राजशाही के सिंहासन पर पहुँचा दिया। उसने राजघराने के ऐशो-आराम में परवरिश पाई थी और अगर वह चाहता तो ख़ुद भी किसी राजशाही तख़्त का मालिक बन जाता। मगर उसके दिल में अपनी कामनाओं की सेवा के

1. यह बयान सन् 1925 ई॰ का है।

बजाए अपनें मज़हब की ख़िदमत का ज़ोश भरा हुआ था। इसलिए उसने अपने जीवन का सिर्फ़ एक उद्देश्य इस्लाम के प्रचार-प्रसार को ठहरा लिया—

"और अपने क़रीबी रिश्तेदारों को डराओ।"

(क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, आयत-214)

अल्लाह के इस हुक्म के मुताबिक़ सबसे पहले अपने ख़ानदान से तबलीग़ (प्रचार) का काम शुरू किया। उसने अपने नाना को जो चम्पा (Champa) का राजा था, इस्लाम की दावत दी। फिर पालमबाँग पहुँचा और अपने रिश्ते के भाई आर्यावामिर को जो राजा की तरफ़ से वहाँ का गवर्नर था, मुसलमान कर लिया। इसके बाद मौलाना जुमादलकुबरा के साथ में माजापाहित (Majapahit) पहुँचा और राजा को, जो उसका मौसा (ख़ालू) था, इस्लाम की दावत दी। राजा ने ख़ुद तो इस्लाम क़बूल नहीं किया मगर उसे अम्पल (Ampel) का गवर्नर नियुक्त करके पूरी आज़ादी के साथ इस्लाम प्रचार-प्रसार की इजाज़त दे दी। चुनाँचे उसने अपने गर्वनरी के ज़माने में अम्पल के लगभग तीन हज़ार ख़ानदानों को मुसलमान किया और इस्लामी-प्रचारकों की एक बड़ी जमाअत को आसपास के द्वीप समूहों और रियासतों में फैला दिया। शेख़ ख़लीफ़ा हुसैन, जिसने मदूरा (Madura) को इस्लाम की रौशनी से रौशन कर दिया था, उसी का भेजा हुआ था। मौलाना इसहाक़, जिन्होंने रियासत बालंगन (Balangan) में इस्लाम का प्रचार-प्रसार किया, उसी से फ़ायदा उठानेवाले लोगों में से थे। राडन पाकू (Raden Paku) जिसने ग्रेसिक के इलाक़े में बुतपरस्ती का निशान मिटा दिया था, उसी की तरबियत के साए में पला-बढ़ा था। ख़ुद उसके दोनों बेटे भी जावा के मशहूर इस्लामी प्रचारकों में गिने जाते हैं। उसके दो क़रीबी रिश्तेदार राडन पटा (Raden Patah) और राडन हुसैन जावा के इतिहास में इस हैसियत से बहुत मशहूर हैं कि उन्होंने हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी शक्ति यानी माजापाहित को पूर्ण रूप से अपने बस में कर लिया। राडन हुसैन ने माजापाहित की फ़ौज को सेना नायक होने की हैसियत से इस्लाम की तरफ़ दावत दी और राडन पाटा ने सन् 1478 ई. में कुफ़्र (नास्तिकता) को अन्तिम पराजय देकर माजापाहित को एक इस्लामी हुकूमत बना दिया।

पश्चिमी जावा

पश्चिमी जावा में इस्लाम के प्रसार का काम इससे भी ज़्यादा मुश्किल था क्योंकि वहाँ के हिन्दू आम जावी लोगों से भी ज़्यादा धार्मिक आस्था में पक्के थे। हालाँकि वहाँ मौलाना हसनुद्दीन चेरीबूनी जैसे महान इस्लामी प्रचारकों ने बड़ी सरगर्मी से इस्लाम का प्रचार किया था। लेकिन हिन्दू मत एक अरसे तक अल्लाह के दीन का मुक़ाबला करता रहा, यहाँ तक कि सोलहवीं सदी में हक़ (सत्य) की अन्तिम जीत हुई और 'पाजाजारन'' की पूरी की पूरी हिन्दू रियासत मुसलमान हो गई।

इस तरह बारहवीं सदी से शुरू होकर सोलहवीं सदी तक चार सौ वर्ष की अवधि में जावा द्वीप-समूह इस्लाम की छत्र-छाया में आ गया और बग़ैर किसी हत्या व रक्तपात के केवल प्रचार-प्रसार और शिक्षा-दीक्षा की शक्तियों से हिन्दू मत ने इस्लाम के मुक़ाबले में हथियार डाल दिए।

मलक्का द्वीप-समूह

जावा के बाद इस्लामी शक्ति का दूसरा ख़ज़ाना मलक्का द्वीप-समूह है। यहाँ इस्लाम का प्रचार-प्रसार बहुत बाद में हुआ है। बल्कि अधिकांश भागों पर तो हस्पानी, पुर्तगाली तिजारत और इस्लाम दोनों साथ-साथ पहुँचे और शान्तिप्रिय मुसलमान व्यापारियों ने लड़ाकू ईसाइयत के मुक़ाबले में अपने मज़हब की कामयाब तबलीग़ की। पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी ईसवी के मध्य यहाँ जावा और मलाया के व्यापारियों ने, जो लौंग और मसाले के जहाज़ भरकर लाते थे, इस्लाम का प्रचार शुरू किया और बहुत कम समय में उनके तबलीग़ी ज़ौक़-शौक़ ने यह चमत्कार दिखाया कि पूरे द्वीप-समूह में इस्लाम फैल गया और चार ज़बरदस्त इस्लामी हुकूमतें क़ायम हो गईं। एक टरनेट (Ternate) की हुकूमत थी, जिसका सुल्तान टरनेट और अलमाहिरा (Halmahera) के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से पर शासन कर रहा था। दूसरी टिडोर (Tidore) की हुकूमत थी, जिसमें टिडोर द्वीप-समूह और अलमाहिरा का एक हिस्सा, सेराम (Seram) का एक हिस्सा और न्यूगिनि का पश्चिमी भाग शामिल था। तीसरी हुकूमत सुल्तान गिलोलो (Gilolo) की थी जो

अलमाहिरा के दरमियान के हिस्से और उत्तरी सेराम पर हुकूमत करता था और चौथी हुकूमत बतजान (Batjan)* की हुकूमत थी, जिसका प्रभुत्व (इक़्तिदार) बतजान द्वीप-समूह और ओबी द्वीप-समूह (Obi) पर छाया हुआ था। ये चारों सल्तनतें कुछ समय तक बहार दिखाने के बाद ईसाई साम्राज्यवाद की ज़हरीली हवाओं से मुरझाकर फ़ना हो गई मगर इस्लाम का वुजूद न उनका एहसानमन्द था और न उनपर निर्भर करता था। चुनांचे अब[1] हॉलैण्ड वग़ैरा की ईसाई ताक़तों में बँट जाने के बाद भी मलक्का द्वीप-समूह में निहायत तेज़ी के साथ इस्लाम फैल रहा है और बहुत जल्द वह ज़माना आनेवाला है कि जब इस्लाम के सिवा वहाँ और कोई मज़हब न रहेगा।

इन द्वीपसमूहों में सबसे पहले टिडोर द्वीप-समूह इस्लाम में दाख़िल हुआ। पन्द्रहवीं सदी में एक अरब व्यापारी शेख मन्सूर ने यहाँ के राजा को मुसलमान करके उसका नाम जमालुद्दीन रखा। सन् 1521 ई॰ में जब हस्पानवी साम्राज्यवादियों (नव-आबादकारों) की दूसरी मुहिम यहाँ पहुँची है तो जमालुद्दीन का बेटा सुल्तान मन्सूर यहाँ का शासक था और इस्लाम को फैले हुए सिर्फ़ पचास साल बीते थे। पुर्तगाली व्यापारियों का बयान है कि टरनेट में टिडोर से भी पहले इस्लाम का प्रसार हो चुका था। अतः सन् 1521 ई॰ में, जब पुर्तगाली मुहिम वहाँ पहुँची थी, उसका इतिहासकार लिखता है कि यहाँ इस्लाम को फैले हुए अस्सी साल गुज़र चुके हैं। इस द्वीप-समूह में इस्लाम के प्रचार-प्रसार की अजीब कहानी है। एक जावी व्यापारी वातू मुल्ला हुसैन, जो अपने व्यापार के लिए यहाँ आकर बस गया था, रोज़ाना सुबह को ऊँची आवाज़ से क़ुरआन पढ़ता था। उसकी आवाज़ पर ग़ैर-मुस्लिम मोहित हो गए और बहुत बड़ी तादाद में उसके आसपास जमा होने लगे। थोड़े ही समय में उसने मुसलमानों की एक बहुत बड़ी जमाअत पैदा कर ली और आख़िर सन् 1495 ई॰ में ख़ुद राजा ने भी ग्रेसिक जाकर इस्लाम क़बूल कर लिया।

---

* अब यह बेकन कहलाता है।

1. यानी सन् 1925 ई॰ में।

अम्बोइना (Amboyna)

अम्बोइना में एक स्थानीय व्यपारी "पाटी पूटा" (Pati Putah) ने इस्लाम की रूह फूँकी और जावा से इस बहुमूल्य नेमत को लाकर अम्बोइना के समस्त तटीय इलाक़ों में फैला दिया। यह पुर्तगाली साम्राज्य के उदय का आरम्भिक ज़माना था। पुर्तगालियों ने तलवार की शक्ति से इस्लाम की तरक़्क़ी को रोकना चाहा जिससे अस्ल में वे सलीबी लड़ाइयों का बदला लेने के लिए निकले थे। मगर उनके सख़्त मुक़ाबले के बावुजूद सत्यधर्म इस्लाम की तरक़्क़ी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि जनसाधारण में उसको कुछ ज़्यादा ही लोकप्रियता हासिल हो गई। अतएव जब सोलहवीं सदी के आख़िरी ज़माने में पुर्तगाल अपने आन्तरिक ख़ौफ़ों में ग्रसित हुआ तो अम्बोइनावालों ने तमाम ईसाई मिशनरियों को मार-मारकर निकाल दिया और गरोह के गरोह इस्लाम में दाख़िल होने लगे। एक द्वीप-समूह के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होने की वजह से मलक्का के दूसरे द्वीप-समूह भी मुसलमान हो गए।

बोरनियो द्वीप-समूह

सन् 1521 ई॰ में गिलोलो का राजा मुसलमान हुआ। इस सदी में बोरनियो भी इस्लामी नूर से रौशन हुआ। सबसे पहले रियासत "बंजर मासिन" (Banjarmasin) ने इस्लाम क़बूल किया। फिर उत्तरी बोरनियो की रियासत ब्रोनामी मुसलमान हुई। इसके बाद सन् 1550 ई॰ में पालम बाँग के व्यापारियों ने सुकाडाना (Sukadana) की रियासत में इस्लाम फ़ैलाया और सन् 1590 ई॰ में बोरनियो का सबसे शक्तिशाली राजा मुसलमान हो गया, जिसका नाम सुल्तान मुहम्मद सफ़ीउद्दीन रखा गया। सन् 1600 ई॰ में जब एक पश्चिमी पर्यटक बोरनियो पहुँचा तो उसने देखा कि तमाम तटवर्ती लोग मुसलमान हो चुके हैं और सिर्फ़ अन्दरूनी इलाक़े में कुफ़्र और बुतपरस्ती का असर बाक़ी है। अठारहवीं सदी के आरम्भ से बोरनियो के अन्दरूनी हिस्सों में भी इस्लाम का प्रचार-प्रसार शुरू हो गया। एक तरफ़ पूँजीपति और संगठित ईसाई मिशनरियाँ अपने मज़हब का प्रचार-प्रसार कर रही हैं और

दूसरी तरफ़ असंगठित और निर्धन मुसलमान व्यापारी अपने दीन की तरफ़ बुला रहे हैं। मगर दुनिया यह देखकर दंग रह गई कि ईसाई असफल हैं और मुसलमान सफल। उन्होंने कुछ सालों की कोशिशों से उत्तरी बोरनियो की एक बहुत बड़ी क़ौम "ऐदान" को मुसलमान कर लिया है और मध्य बोरनियो की 'डायक' क़ौम भी ईसाइयत के मुक़ाबले में इस्लाम को ज़्यादा पसन्द करती है।

सिलेबस द्वीप-समूह (Sulawesi)

सिलेबस (Celebes) द्वीप-समूह में भी इस्लाम का प्रचार-प्रसार इसी आम उसूल पर हुआ कि पहले जावी और मलाई व्यापारी इस्लाम को लेकर तटीय इलाक़ों पर पहुँचे और स्थानीय व्यापारियों के ज़रिए इस्लाम देश के आन्तरिक हिस्सों में पहुँच गया। सन् 1540 ई॰ में जब पुर्तगाली साम्राज्यवादी यहाँ पहुँचे तो इस्लाम का आरम्भ हो रहा था और सिर्फ़ गोवा (Gowa) में कुछ मुसलमान रहते थे। साठ साल के अन्दर-अन्दर उसे इतनी तरक़्क़ी हुई कि तमाम तटीय इलाक़े मुसलमान हो गए और मकासर (Makassar) की रियासत ने राजा समेत इस्लाम क़बूल कर लिया। मकासर से अलफ़र और बूगी क़ौमों में दीन का प्रचार-प्रसार हुआ और बूगी क़ौम पर इसका यह प्रभाव पड़ा कि इसकी सभी स्वाभाविक योग्यताएँ और ख़ूबियाँ जाग उठीं। इसकी बुद्धिमत्ता, कर्मठता और तत्परता ने इसे मलक्का द्वीप-समूह की सबसे ज़्यादा सभ्य क़ौम बना दिया। अब वह एक प्रचारक-प्रसारक क़ौम की हैसियत से पूर्वीय भारत में एक विशेष स्थान रखती है। न्यूगिनि से लेकर सिंगापुर तक इसके व्यापारी अपने जहाज़ लेकर फिरते हैं और उनके असर से निहायत तेज़ी के साथ इस्लाम फैल रहा है। सुम्बावा (Sumbawa), लोम्बोक (Lombok), सुन्दा (Sunda) द्वीप-समूह आदि सभी द्वीप-समूहों में उसकी बदौलत सच्चे दीन का प्रचार-प्रसार हुआ और ख़ुद सिलेबस में उसने ईसाइयत को निहायत ज़बरदस्त शिकस्त दी। अट्ठारहवीं सदी में ईसाई प्रचारकों-प्रसारकों ने बोलाँग मोंगोंडौ (Bolaang Mongondow) के राजा को ईसाई कर लिया था और उसके असर से पूरी रियासत ईसाई हो गई थी। मगर बूगी ताजिरों (व्यापारियों) ने एक सदी के अन्दर-अन्दर उसे ईसाइयत

के चंगुल से आज़ाद करा लिया और अंततः सन् 1844 ई॰ में ख़ुद राजा जैकोबस ने भी इस्लाम स्वीकार कर लिया।

फ़िल्पाइन द्वीप-समूह

निहत्थे इस्लाम के चामत्कारिक वशीकरण का सबसे बड़ा प्रदर्शन फिल्पाइन द्वीप-समूह में हुआ। यहाँ इस्लाम[1] का प्रारम्भ मलाया के एक व्यापारी 'शरीफ़ काबंग सुवान' ने किया था जो अपने कुछ साथियों के साथ मण्डानाव में आकर आबाद हुआ था। यहाँ उसने इस्लाम का प्रचार करके अधिकता के साथ फिल्पाइनवालों को मुसलमान किया और इसके बाद मुसलमान व्यापारियों के आने और इस्लाम के प्रचार-प्रसार का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। उन असभ्य क़बीलों में इस्लाम की तालीम का यह असर था कि सन् 1521 में जब हस्पानवी साम्राज्यवादी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने मुसलमानों और काफ़िरों (नास्तिकों) के सामाजिक रहन-सहन, तहज़ीब और अखलाक़ में एक नुमायाँ फ़र्क़ पाया और उन्हें बड़ी हैरत हुई कि इस अल्पावधि में मूर्तिपूजक जंगली लोगों की ज़िन्दगी में यह महान क्रान्ति क्यों कर पैदा हो गई। चूँकि यहाँ इस्लाम का प्रभाव बहुत नया और ताज़ा था इसलिए हस्पानिया (स्पेन) ने उसे मिटाकर ईसाइयत को फैलाने के लिए निहायत सख्त कार्रवाइयाँ शुरू कीं और तलवार के ज़ोर से क़बीलों को ईसाई बनाने लगे। यह सिलसिला बीसवीं सदी के तथाकथित सभ्य दौर तक चलता रहा और स्पेन ने मज़हब की ख़ातिर ज़ुल्म-सितम ढाने में कोई कसर न उठा रखी। लेकिन इसके बावुजूद वहाँ ईसाइयत के मुक़ाबले में इस्लाम का प्रचार- प्रसार बहुत ही तेज़ गति के साथ हुआ। क्योंकि फ़िल्पाइन के लोग हज़ारों की तादाद में चारों ओर से भाग-भागकर मिन्डानाव (Mindanao) और सूलू (Sulu) की इस्लामी रियासतों में आए थे और फ़ौज दर फ़ौज इस्लाम क़बूल करते थे, और फिर हैरत यह है कि उन्नीसवीं सदी के अन्त में जब यहाँ अमेरिका का क़ब्ज़ा हो गया और धार्मिक ज़ुल्म-ज़्यादती का दौर ख़त्म हो गया तो इस्लामी प्रचार- प्रसार की वह तेज़ रफ़्तारी भी बाक़ी नहीं

---

1. सन् 1925 ई॰ का बयान है।

रही। फिर भी शान्ति के दौर में मुसलमान व्यापारी बहुत तेज़ी के साथ आसपास हर तरफ़ फैल गए और ताज़ातरीन .ख़बरों से मालूम होता है कि वहाँ .ख़ामोशी के साथ इस्लामी प्रचार-प्रसार का सिलसिला नए सिरे से जारी हो गया है।

न्यूगिनि

न्यूगिनि में इस्लाम का प्रसार अत्यन्त आधुनिक काल से सम्बन्ध रखता है और ज़्यादातर तटीय इलाक़ों तक सीमित है। शुरू में उसका पश्चिमी इलाक़ा सुल्तान बतजान के शासनाधीन था। इसलिए सोलहवीं सदी में उत्तर-पश्चिमी गुयाना में इस्लाम का असर बहुत दूर-दूर तक फैल गया। सन् 1606 ई. में मुसलमान व्यापारी उसे पश्चिम की ओर भी ले गए और ओनीन द्वीप-समूह की मूर्तिपूजक आबादी में इस्लाम को फैला दिया। मगर इन क्षेत्रों में इस्लाम-प्रसार का अस्ल ज़माना उन्नीसवीं सदी का है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में आदी (Adi) नामक द्वीप-समूह के लोगों ने इस्लाम क़बूल किया और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में सीराम और गोराम के मुसलमान व्यापारियों ने पलावा वग़ैरा द्वीप-समूहों को इस्लाम से परिचित कराया। काई (Kai) के द्वीप समूहों में उन्नीसवीं सदी के मध्य तक मुसलमानों का नामो- निशान तक न था। सिर्फ़ बन्दा (Banda) द्वीप-समूह के कुछ व्यापारी रहा करते थे, अचानक सन् 1878 ई. में प्रचार-प्रसार का काम शुरू हुआ और बहुत ही कम समय में मदूरा, जावा और बामी के मुसलमान व्यापारियों ने इतनी अधिकता के साथ काई द्वीप-समूह के लोगों को मुसलमान कर लिया कि इस वक़्त वहाँ मुसलमानों की तादाद सोला हज़ार से अधिक है जो कुल आबादी के आधे के बराबर है।[1]

सारे मलाया द्वीप-समूहों में इस्लाम की इतनी महान सफलता और कामयाबी, जिसका थोड़ा-सा हाल आपने इन लाइनों में पढ़ा है, छः सौ साल की .ख़ामोश दौड़-धूप का नतीजा है जो ज़्यादातर व्यापारियों और सामान्य पर्यटकों (सय्याहों) ने अंजाम दी हैं। उनके पास कोई तलवार या हुकूमत की

1. यह स्थिति सन् 1925 ई. की है। —अनुवादक

शक्ति नहीं थी बल्कि अल्लाह के दीन के प्रचार-प्रसार का एक ज़िन्दा और ताबिंदा ज़ौक-शौक़ था, जिसने उन्हें अपने सफ़र के ख़तरों, परेशानियों और व्यापारिक लाभों के धनलोलुपता भरे जीवन में भी दीन की खिदमत का आशिक़ और दीवाना बनाए रखा और उनके अन्दर ऐसा नशा पैदा कर दिया कि उन्होंने तमाम अन्य उद्देश्यों को दूसरा दर्जा देकर सिर्फ़ भलाई की तरफ़ दावत और सत्य-धर्म के प्रचार-प्रसार को अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया। आधुनिक काल में भी, जबकि सारे संसार के मुसलमान, अफ़्रीक़ा को छोड़कर, फ़र्ज़ (कर्तव्य) से ग़ाफ़िल हो गए हैं, पूर्वी भारत के आम मुसलमानों में यह ज़ौक़-शौक़ बाक़ी है। चुनाँचे हम देखते हैं कि अब भी वहाँ व्यापारियों और कारोबारी आदमियों के अलावा हुकूमत हॉलैण्ड के सरकरी मुलाज़िम तक इस्लामी प्रचार-प्रसार के अपने फ़र्ज़ को अदा करते हैं और उन लोगों ने मलाई ज़बान को इतनी अधिकता के साथ इस्लामी साहित्य से भर दिया है कि जो ग़ैर-मुस्लिम, सरकारी ज़बान होने की हैसियत से इसको सीखते हैं वे इस्लामी शिक्षाओं से ज़रूर प्रभावित होते हैं और ज़्यादातर मुसलमान हुए बग़ैर नहीं रहते।

अध्याय-7

अमल की दावत

यह इतनी लम्बी दास्तान सिर्फ़ इसलिए नहीं थी कि इससे कुछ पुराने क़िस्सों का बयान कर देना अभीष्ट था बल्कि इससे अस्ल में हम यह बताना चाहते थे कि इस्लाम की दीनी और दुनियावी (सांसारिक) शक्ति का अस्ल स्रोत वही 'भलाई की तरफ़ बुलाना नेकी का हुक्म देना और 'बुराई से रोकना' है, जिसपर उसकी सारी ज़िन्दगी की बुनियाद रखी गई थी। जिसके लिए मुस्लिम नाम की एक क़ौम को प्रतापवान अल्लाह ने पैदा किया था और चूँकि पैग़ाम की फ़ितरत इस बात की माँग करती है कि उसे जिसकी तरफ़ भेजा गया है उस तक पहुँचाया जाए, इसलिए तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) ख़ुद इस्लाम की फ़ितरत में शामिल है। इस्लाम हक़ीक़त में एक इलाही पैग़ाम (ईश-सन्देश) है जिसका सम्बोधन सारे संसार की मानव-जाति से है और हर आदमी जिस तक यह आसमानी बरकतों का पैग़ाम पहुँच जाए इस काम पर अल्लाह की तरफ़ से नियुक्त है कि वह अपनी जाति के ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक इसको पहुँचा दे। यही हक़ीक़त थी जिसको क़ुरआन की इस आयत—

> "दुनिया में वह बेहतरीन गरोह तुम हो जिसे इनसानों की हिदायत (मार्गदर्शन) के लिए मैदान में लाया गया है। तुम नेकी का हुक्म देते हो, बदी (बुराई) से रोकते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो।" (क़ुरआन, सूरा-3 इमरान, आयत-110)

में ज़ाहिर किया गया था, और यही एक मक़सद था जिसे पूरा करने के लिए प्रतापवान अल्लाह ने मुसलमान क़ौम को पैदा किया था। क़ुरआन में यह भी कहा गया—

> "तुम में कुछ लोग तो ऐसे ज़रूर रहने चाहिएँ जो नेकी की तरफ़ बुलाएँ, भलाई का हुक्म दें और बुराइयों से रोकते रहें।"
> (क़ुरआन, सूरा-3 इमरान, आयत-104)

ज़िम्मेदारी के इस एहसास ने इस्लाम की तेरह सौ साला ज़िन्दगी में जो हैरत-अंगेज़ चमत्कार दिखाए हैं उनकी एक निहायत संक्षिप्त-सी रूपरेखा पेश की जा चुकी है। इसके अध्ययन से यह हक़ीक़त रौशन हो गई होगी कि जिन मुसलमानों में अपने मुसलमान होने की ज़िम्मेदारी का एहसास मौजूद था उन्होंने किस तरह—

"ऐ नबी! अपने रब के रास्ते की तरफ़ दावत दो, हिकमत और उम्दा नसीहत के साथ।" (क़ुरआन, सूरा-16 नह्ल, आयत-125)

अल्लाह के इस हुक्म पर अमल करते हुए सिर्फ़ तलक़ीन और तबलीग़ की शक्ति से एक दुनिया को इस्लाम की शीतल छाया में पहुँचा दिया। अफ़्रीक़ा के विशाल महाद्वीप में बग़ैर किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती व लालच और छल-कपट के जिस तरह करोड़ों लोग इस्लाम की छत्र-छाया में आ गए, चीन में बग़ैर किसी लालच और ज़ोर-ज़बरदस्ती के जिस तरह आबादियाँ की आबादियाँ इस्लाम की फ़रमाँबदार बन गईं, मलाया द्वीप-समूहों में निहत्थे और निर्बल व्यापारियों के हाथों जिस तरह चार बटा पाँच आबादी एक ख़ुदा की परस्तार (उपासक) बन गई, तातारिस्तान के मुस्लिमकुश और ख़ूँख़ार वह्शियों (जंगलियों) को कमज़ोर और नाज़ुक औरतों और फ़क़ीर दुर्वेशों ने जिस तरह इस्लाम की रहमत के द्वार पर लाकर झुका दिया, इसकी शिक्षाप्रद दास्तान हम ने इसी एहसास के चमत्कार दिखाने के लिए अपनी मिल्लत के भाइयों के सामने पेश की है और इससे हमारा मक़सद यह है कि उनमें भी किसी तरह यह एहसास जाग उठे।

सन् 1857 ई॰ के बाद की प्रचार-सम्बन्धी गतिविधियाँ

सन् 1857 ई॰ की नाकाम जंगे-आज़ादी के ज़माने में भारतीय मुसलमानों की इस्लामी ग़ैरत को जो हृदय-विदारक कष्ट पहुँचे थे उन्होंने कुछ समय के लिए उनकी दीनी संवेदनाओं को जागृत कर दिया था और इसकी बदौलत सन् 1857 ई॰ के बाद लगभग चालीस साल तक इस्लाम-प्रचार का काम निहायत तेज़ी के साथ होता रहा। मगर अफ़सोस कि बाद में ग़ैर-मुस्लिमों के प्रभावी होने के असर से वह दीनी एहसास और वह प्रचार-अभिरुचि और

शौक़ ख़त्म हो गया और दीन की ख़िदमत का वह आम जोश जो कुछ समय के लिए पैदा हो गया था, आपस ही में एक-दूसरे को काफ़िर बनाने और आपसी झगड़े-फ़साद में काम आने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के इतिहास पर जब हम नज़र डालते हैं तो यह हैरत-अंग्रेज घटना हमारे सामने आती है कि उस ज़माने में प्रचार करने की विधिवत कोई व्यवस्था न होने के बावुजूद नव-मुस्लिमों की तादाद में हर साल दस हज़ार से लेकर छः लाख तक बढ़ोत्तरी होती रही है। उस ज़माने में आलिमों और उपदेशकों की एक बहुत बड़ी जमाअत ऐसी पैदा हो गई थी जिसने अपनी ज़िन्दगी दीन की तबलीग़ के लिए समर्पित कर दी थी और अपनी व्यक्तिगत हैसियत में शहर-शहर और गाँव-गाँव फिरकर सैकड़ों आदमियों को इस्लाम में दाख़िल कर लिया था। इनके अलावा आम कारोबारी मुसलमानों में भी यह ज़ौक़-शौक़ इतना ज़्यादा फैल गया था कि दफ़्तरों के मुलाज़िम और मामूली दुकानदार तक इस्लाम के प्रचार-प्रसार का काम करते थे। चुनाँचे अंजुमन हिमायते-इस्लाम[1] की पुरानी रिपोर्टों में हम मदरसों के अध्यापकों, सरकारी विभागों के कर्मचारियों, छोटे-छोटे व्यापारियों यहाँ तक कि एक ऊँट-गाड़ीवाले तक को अपने दीन के प्रचार-प्रसार में व्यस्त पाते हैं।

लेकिन अब

मौजूदा ज़माने में इस्लाम-प्रचार की सुस्त रफ़्तारी की वजहों पर अगर ग़ौर करें तो यह बिल्कुल साफ़ नज़र आता है कि इसकी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ हमारी अपनी ही कोताही, ग़फ़लत और दीनी बेहिसी पर आती है, वरना साफ़ ज़ाहिर है कि इस्लाम आज भी वही है जो पहले था। उसकी फ़ितरत में न कोई परिवर्तन हुआ है और न कभी हो सकता है, अलबत्ता हम बदल गए हैं, हमारी ज़िन्दगी बदल गई है, हमारी भावनाएँ और संवेदनाएँ बदल गई हैं और यह सब गिरावट (पतन) इसी का नतीजा है। अतः अगर आज भारत[2] में इस्लाम-प्रसार का मसला एक नाज़ुक सूरत इख़्तियार कर गया है

1. लाहौर।
2. मुराद है संयुक्त भारत वर्ष।

तो इसका सही हल यह नहीं है कि हम कान्फ्रेन्सों पर कान्फ्रेन्सें आयोजित करें। अंजुमनों पर अंजुमनें बनाएँ, पत्रिकाओं पर पत्रिकाएँ प्रकाशित करें और महज़ लड़ने-झगड़ने में अपना वक़्त बरबाद कर दें, बल्कि इसका अस्ल हल यह है कि हम मुसलमानों को मुसलमान बनाएँ, उनमें सही इस्लामी रूह फूँक दें, उनकी ज़िन्दगियों को ख़ालिस इस्लामी ज़िन्दगी के साँचे में ढाल दें, उनके अन्दर से उन तमाम झूठी आस्थाओं, बेकार रस्मों और ग़लत आदतों को दूर कर दें जो सदियों तक एक मुशरिक क़ौम के साथ रहते-रहते पैदा हो गई हैं और उनके अन्दर धार्मिकता का एक ऐसा जज़्बा पैदा कर दें जो हर मुसलमान को अपने दीन का एक सरगर्म प्रचारक बना दे।

हमने जगह-जगह इस बात पर ज़ोर दिया है कि मुसलमानों ने कभी ईसाइयों की तरह मिशनरी सोसायटियाँ बनाकर काम नहीं किया। इससे मुराद यह नहीं है कि हम संगठन के साथ काम करने के विरोधी हैं बल्कि असल में मुराद यह है कि यह काम सिर्फ़ एक जमाअत या कुछ जमाअतों का नहीं है, बल्कि इसके लिए मुसलमानों में दीन की तबलीग़ के एक ऐसे आम ज़ौक़-शौक़ की ज़रूरत है कि हर मुसलमान अपने आपको इस पवित्र और नेक काम के लिए नियुक्त समझने लगे।

सिर्फ़ तबलीग़ करनेवाली जमाअतें या सर्वव्यापी तबलीग़ी ज़ौक़-शौक़?

अगर आम मुसलमान इस ज़ौक़ से अनजान रहें और सिर्फ़ एक जमाअत या कुछ जमाअतों पर यह काम छोड़ दिया जाए तो हम कभी ग़ैर-मुस्लिमों के मुक़ाबले में कामयाब नहीं हो सकते, क्योंकि हर जगह मुसलमानों का आम तबलीग़ी ज़ौक़-शौक़ ही को विजय और सफलता प्राप्त हुआ है। अगर अफ़्रीक़ा में मुसलमानों का यह आम ज़ौक़-शौक़ न होता और सिर्फ़ कुछ जमाअतें ही प्रचार-प्रसार के फ़र्ज़ को पूरा करने के लिए छोड़ दी जातीं तो ईसाइयों की कई दर्जा अधिक ताक़तवर और दौलतमन्द सोसाइटियों के मुक़ाबले में उन्हें क़ियामत तक वह कामयाबी नहीं मिल सकती थी जिसपर आज सारा ईसाई जगत चकित और दाँतों तले उँगली दबाकर रह

गया है। इस तरह अगर मलाया द्वीप-समूहों में आम व्यापारियों, पर्यटकों और सैलानियों का दीनी ख़िदमत का जज़्बा (धार्मिक सेवा-भाव) काम न करता और केवल कुछ अरबी और भारतीय उपदेशकगण और आलिम ही इस्लामी दावत का फ़र्ज़ निभाते जो कभी-कभी वहाँ पहुँचते रहे थे तो शायद आज प्रशान्त महासागर के तटों पर अज़ान की वह गूंज इस अधिकता से सुनाई न देती जो आज की बुतपरस्ती और ईसाई साम्राज्यवादियों के संयुक्त हस्तक्षेप के बावुजूद सुनाई दे रही है। इसमें कोई शक नहीं कि इस्लाम की दावत देने का फ़र्ज़ कुछ लोगों के अदा करने से सबकी तरफ़ से अदा हो जाता है। यानी इसके लिए किसी एक जमाअत का खड़ा हो जाना पूरी उम्मत के लिए काफ़ी हो जाता है लेकिन शरीअत (इस्लामी क़ानून) की यह छूट केवल मुसलमानों की आसानी के लिए है न कि उन्हें दीनी ख़िदमतों से बिल्कुल भार-मुक्त और बेपरवाह कर देने के लिए। इस छूट का मतलब अगर कुछ है तो वह सिर्फ़ यह है कि यह फ़र्ज़ लागू तो तमाम मुसलमानों पर होता है, जिसे सबको अदा करना चाहिए, लेकिन कम से कम एक जमाअत तो ऐसी ज़रूर होनी चाहिए जो हमेशा लाज़मी तौर पर इस काम को अनजाम देती रहे और वह जमाअत यक़ीनन उम्मत के अलिमों और परहेज़गारों की जमाअत है।

वर्तमान दशा के सुधार के लिए कुछ अमली उपाय

इन विभिन्न तदबीरों में से कुछ तदबीरें, जो दूसरे देशों के तबलीग़ी तजुर्बों को पेशे-नज़र रखते हुए हमारे ख़याल में इस्लाम के प्रचार के लिए फ़ायदेमन्द हैं हम यहाँ दर्ज करते हैं। उम्मीद है कि मिल्लत (क़ौम) के लीडर इनपर ग़ौर करेंगे—

(1) ज़ात-पात और असमानता का अन्त

मुसलमानों में से ज़ात-पात के उस भेदभाव को मिटा दिया जाए जो हिन्दुओं के साथ रहते-रहते उनके अन्दर पैदा हो गया है। इस्लाम का यह समानता-पोषक अक़ीदा कि कोई इनसान अपनी पैदाइश के एतिबार से नापाक या ज़लील (पतीत) नहीं है, हमेशा इसकी कामयाबी का बड़ा साधन

रहा है और ज़रूरत है कि हम दोबारा इसको अपने तमाम मामलात में एक बुनियादी उसूल की हैसियत से दाखिल कर लें।

(2) वंशानुगत (ख़ानदानी) भेदभाव का अन्त

हमारे यहाँ अमतौर पर नव-मुस्लिमों को ख़ानदानी (नसबी) मुसलमानों के मुक़ाबले में छोटा समझा जाता है। इस ग़ैर-इस्लामी अक़ीदे को सख़्ती के साथ जड़ से उखाड़कर फेंक देना चाहिए और नव-मुस्लिम औरतों और मर्दों से शादी-ब्याह के सम्बन्ध बनाने की रस्म दोबारा ज़िन्दा होनी चाहिए। हमारे यहाँ के ऊँचे ख़ानदानवाले इससे परहेज़ करते हैं, मगर हममें से कोई ऊँचे से ऊँचे ख़ानदान का आदमी भी अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के मुक़ाबले में अपनी उच्चता को पेश नहीं कर सकता, जिन्होंने दो नव-मुस्लिमों, यानी हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) और हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) की बेटियाँ ली थीं और दो नव-मुस्लिमों, यानी हज़रत उसमान (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) को अपनी बेटियाँ दी थीं।

(3) आम दीनी (धार्मिक) और नैतिक जीवन का सुधार

अगर मुसलमानों के आन्तरिक जीवन का सुधार किसी गम्भीर प्रेरणा का मुहताज हो तो कम से कम उनकी ज़ाहिरी ज़िन्दगी में ऐसी इस्लामी कशिश (आकर्षण) पैदा करनी चाहिए कि ग़ैर-मुस्लिम क़ौमें ख़ुद-ब-ख़ुद उनकी तरफ़ खिंचने लगे। मिसाल के तौर पर जमाअत के साथ नमाज़-रोज़ों की पाबन्दी, मुशरिकाना रस्मों और नए रिवाजों से बचाव और शरीअत में जिनसे रोका है उनसे परहेज़ की आम तलक़ीन और नसीहत की जाए। ख़ासतौर पर मुसलमानों में अख़लाक़ी जुर्मों को जड़ से उखाड़ फेंकने की सख़्त कोशिश की जाए। क्योंकि जब मुसलमानों का नैतिक चरित्र ऊँचा होगा तो ग़ैर-मुस्लिमों के दिलों में उनकी बड़ाई का सिक्का बैठ जाएगा।

(4) धार्मिक मामलों की शिक्षा और प्रचारक गतिविधियों की प्रेरणा

जुमा के ख़ुतबों, रात की मजलिसों, मदरसों और आम पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिए मज़हबी मसलों की तालीम दी जाए। विभिन्न धर्मों की तुलनात्मक

बातों की सामान्य बहसें निहायत साफ़ और स्पष्टता के साथ बताई जाएँ और उनके अन्दर प्रचार-प्रसार का शौक़ पैदा किया जाए। विशिष्टता के साथ मदरसों के टीचर, सरकारी विभागों के कर्मचारियों और आम कारोबारी लोगों में इस प्रेरणा को फैलाना बहुत लाभदायक है, क्योंकि उन्हें आम लोगों से बहुत ज़्यादा मेल-जोल का मौक़ा मिलता है और वे बहुत कामयाबी के साथ तबलीग़ कर सकते हैं।

अन्तिम बात

दावत और तबलीग़ एक बहुत-ही ज़बरदस्त काम है और सज्जादानशीन हज़रात अपने हुजरों से निकलें। आलिमों का फ़र्ज़ तो ज़ाहिर है कि उन्हें "ख़शियत"[1] (अल्लाह से डरनेवाले ज्ञानी) का दर्जा और बनी-इसराईल के नबियों के जैसे दर्जेवाली फ़ज़ीलतें कुछ मुफ़्त ही नहीं मिल गई हैं बल्कि उनपर उम्मत की इस्लाह, सुधार और हिदायत का एक बहुत बड़ा भार रख दिया गया है जिसे उठाने में ज़र्रा बराबर भी कोताही करने पर वे ख़ुदा की सख़्त पकड़ से नहीं बच सकते। मगर हम मुहतरम सूफ़ियों को भी उनका फ़र्ज़ याद दिलाना चाहते हैं। जिन बुज़ुर्गों के आसनों पर वे विराजमान हैं वे उपदेश, मार्ग-दर्शन और हिदायत की मसनदें हैं। उनकी विरासत अपने साथ सिर्फ़ कुछ फ़ज़ीलतें और सांसारिक लाभ ही नहीं रखतीं, बल्कि वे बहुत-सी ज़िम्मेदारियाँ और बहुत-सी जवाबदेहियाँ भी रखती हैं। जिनके एहसास ने पूर्वज सूफ़ियों को इस्लाम की ख़िदमत के सिवा और किसी मतलब ही का न रखा था। आज अगर ये हज़रात अपनी उन ज़िम्मेदारियों को महसूस कर लें जो एक मुसलमान से बैअत (मुरीद बनाना) लेने के बाद उसकी इस्लाह, सुधार और मन-पवित्र करने के लिए उनपर लागू होती हैं तो मुसलमानों की सैकड़ों मुसीबतों का इलाज हो सकता है। बड़े-बड़े सज्जादानशीनों और पीराने-तरीक़त के मुरीदों के दायरे (क्षेत्र) में कम से कम करोड़-डेढ़ करोड़

---

1. इस क़ुरआनी आयत की तरफ़ इशारा है : "हक़ीक़त यह है कि अल्लाह के बन्दों में से सिर्फ़ (अल्लाह की ख़ूबियों का) इल्म (ज्ञान) रखनेवाले लोग ही उससे डरते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-35 फ़ातिर, आयत-28)

मुसलमान[1] हैं और इन पर इन लोगों को ऐसा ज़बरदस्त असर (प्रभाव) हासिल है कि वे अपने एक इशारे से उनकी ज़िन्दगियों का निज़ाम बदल सकते हैं। ऐसी बड़ी जमाअत में इस्लामी ख़िदमत का जोश पैदा कर देना यह अर्थ रखता है कि कुछ ही सालों में इस भू-भाग का नक़्शा ही बदल जाएगा। तो क्या हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि ये हज़रात अपने अमन व सलामती (शान्ति) के आस्तानों से निकलकर इस नाज़ुक वक़्त में कुछ ख़ुदा और उसके सच्चे-दीन के लिए भी दौड़-धूप करेंगे?

1. यह अन्दाज़ा सन् 1925 ई॰ का है, अब वस्तुस्थिति यक़ीनन इससे अलग है।